वर्ष १०.
भाग १.
अंक २.

सम्पादक – ब्र. हरिदत्त चतुर्दशी

५ श्रावण १९९०.
२१ अगस्त १९३३
शुक्रवार.

आथर्वणीराङ्गिरसो दैवी मनुष्यजा उत ।
ओषध्यः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥
अथर्व ११।४।६.

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥
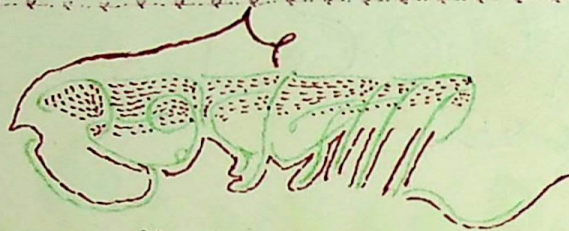
" स्वयं मैं तो स्वतन्त्र फेडरल प्रजातन्त्र शासन का समर्थक हूँ। और यही अन्तिम लक्ष्य है जिसे मैं सदा अपने सम्मुख रखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि भारत स्वयं अपने भाग्य का निर्णय करने वाला बने, जैसा कि वह अपने गौरवमय अतीत में था। ऐसा होने पर ही वह अपनी विशेषता का विकास कर सकेगा। मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि भारत अनियन्त्रित स्वातन्त्र्य को प्राप्त करे और संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपना मस्तक ऊंचा कर के खड़ा रह सके। मैं चाहता हूँ कि भारत पूर्ण स्वतन्त्रता से मिलने वाले आनन्द का उपभोग करे और उस आनन्द में उन तमाम बातों का आविष्कार करे जो उसके तथा समस्त संसार के लिये लाभप्रद हों। मैं चाहता हूँ कि भारत का अपना जुदा झण्डा हो, अपनी पृथक् जल-सेना और थल-सेना हो, और उसके राजदूत अन्य स्वतन्त्र देशों की राजधानियों में रहें। स्वतन्त्रता तो मेरा ध्येय है। वह एक ऐसी वस्तु है, जिसका मूल्य आंकना असम्भव है। मनुष्य की आत्मा के लिये स्वाधीनता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि उसके फेफड़ों के लिये हवा है। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही तो कहा है:—
" स्वतन्त्रता आत्मा का गीत है।" स्वाधीनता सच्चा अमृत है — मृत्यु लोक का जीवन — रसायन है।"

"सुभाषचन्द्र बोस।"

कविता~कुसुम

कविता~कुसुम

अभ्युदय

गुरुकुल की याद में
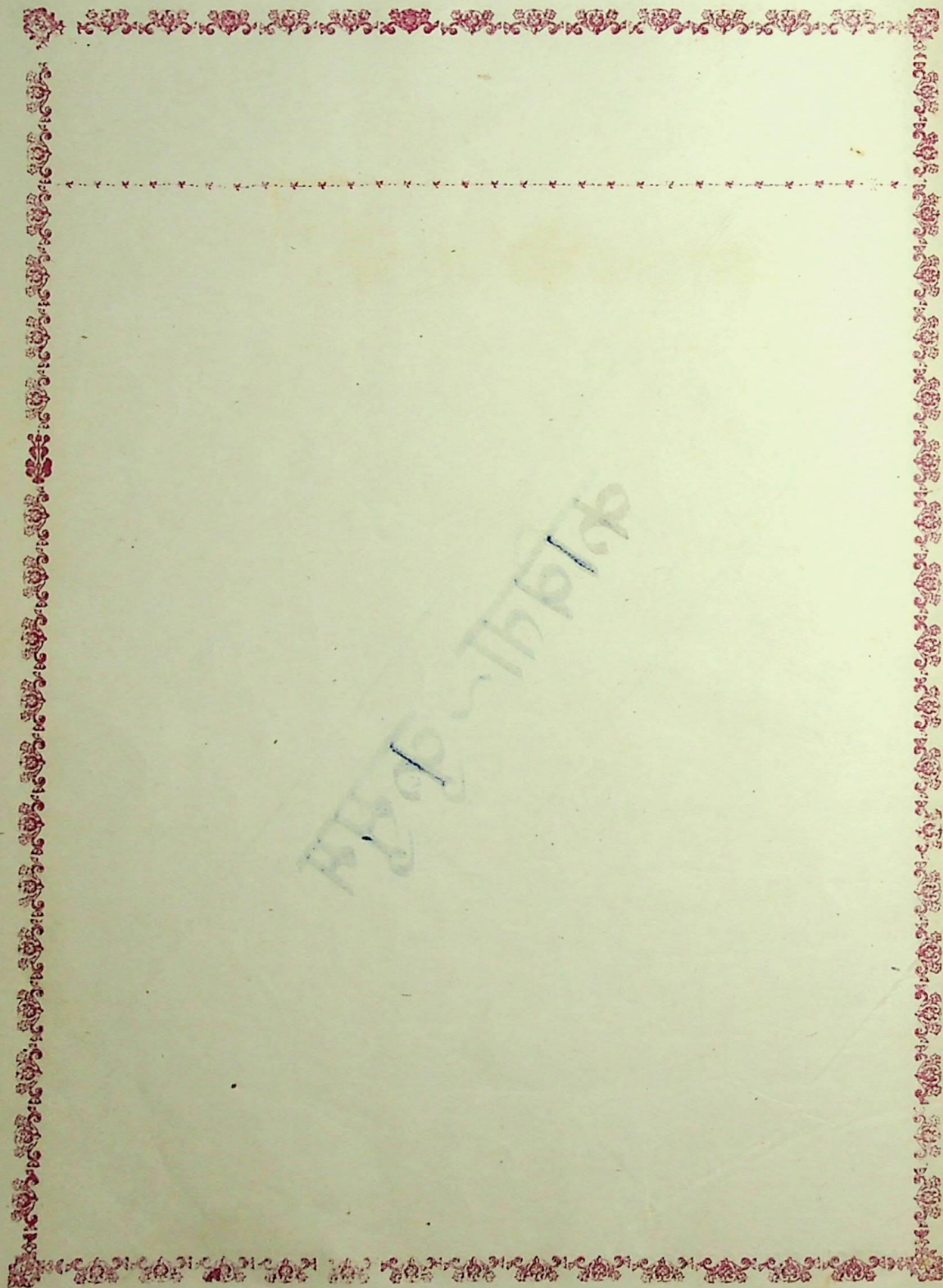
(श्री सुरेन्द्रमोहन जी वेदालंकार)

मैं अपने सखा ढूंढना चाहता हूँ.
कि उन के हि संग खेलना चाहता हूँ।

x x x x x x

बुलाती है सन्ध्या पे अञ्चल हिलाकर
उषा आन कहती है कुछ गुन गुना कर
हवा के झकोरे पे सन्देश ला कर
गुज़र जाते हैं पास से सन सनाकर
मगर मुझ को भाता नहीं इन को आना
बुलाना जगाना व गा कर सुनाना
मैं इन में उन्हें ढूंढना चाहता हूं
कि उन के हि संग खेलना चाहता हूं॥

x x x x x x x

वह तारों का आँसू भरी आँख लाना
पे आकर सरे शाम से राह तकना
मचलना थिरकना व आँसू गिराना

गुरुकुल की याद में

यों ऊषा से कलियों का वह मुँह धुलाना।
गज़ब है समां कुछ को भाता नहीं है.
कि उन के बिना कुछ सुहाता नहीं है।

मैं गङ्गा में जो तैरना चाहता हूँ
समा याद हों वे भी फिर चाहता हूं॥

× × × × × ×

पतङ्गों का दीपे में आकर के गिरना
मगर सिर के पहले मुश्किल से उठना
वो ऐसी जुदाई कि पहला मिलना
उसी का मिलकर उसी का मिटना
वो कुछ देर दिल का ख़ुशियों में गाना
और फिर बाद में बैठ मातम मनाना

मैं इस की ही कोई दवा चाहता हूं
कि उन के ही संग खेलना चाहता हूं॥

× × × × × ×

उम्मीद

हिमालय के दामनों का फूल सहारा
वो नदी में किलोल का खुश नज़ारा
सरे शाम से बंसरी की वो तानें
कहीं रात में अंजुमन की वो शानें
ये सब कुछ है अब भी मगर हम नहीं हैं
हैं तारे यहां पर निगाहें वहीं हैं

मैं मचला फिर घूमना चाहता हूं
मैं उस गोद में खेलना चाहता हूं॥

× × × × ×

अरे कोई आकर ये पर्दा उठा दे
मेरी आंख को वो नज़ारा दिखा दे
वही तीरे गङ्गा हिमालय का दामन
वही मीठी तानों में कुलगीति गायन
वही मिल के हँसना व रोना हमारा
वही रहना फिर मगना हमारा।

वही खेल मैं खेलना चाहता हूं
उन्हीं झाड़ियों में रमा चाहता हूं॥

मेरा स्वर्ग

(श्री सत्यपाल जी 'उत्कृष्ट')

बूढ़े भला ! बूढ़े हो, न सोच कुछ करना जो
आज कुछ यों ही मेरे मुख से निकल जाय।
सोचता रहा हूं, समझता भी रहा हूं दिल
को यह समस्या किसी भाँति हो सरल जाय।
दृश्य तो अनोखे तुमने हैं ऐसे २ रचे
आँख जो उठाके रोता दिल भी बहल जाय।
किन्तु एक मुक्ति मुक्ति मुक्ति की लगाई रट
ऐसी कि हृदय मस्त होभी तो दहल जाय ॥१

◎ — ◎ — ◎

जाने ऐसी जगत में वस्तुएं वे कौन सी हैं
मुक्ति चाहूं और पिण्ड जिन से छुड़ाऊँ मैं।
आँख जित ओर भी उठाऊँ, स्वर्ग दीखता है
तुम ही बताओ क्यों तुम्हारा स्वर्ग चाहूं मैं।

सुना है - अधिक स्वर्ग से है मोक्षधाम कोई
पहुँच जो जाऊं वहां, फिर से न आऊं मैं।
धन्य धन्य ऐसे मोक्ष को है नमस्कार मेरा
एक उपकार मानूं और फँस जाऊं मैं ॥२.

◎ ◎ ◎

मैंने जन्म जन्म में जो पुण्य हों कमाये कभी
देखना बही में अपनी - निकाल रखना।
मुक्ति तो सुना है - है अलभ्य सी ही वस्तु कोई
किन्तु फल स्वर्ग हो कहीं तो ख़्याल रखना
सहसा मुझे ही नहीं दे न वह डालना औ
अपने ही पास वह ज़रा सँभाल रखना
देना उन को ही, तेरे भक्त जो रहे हों और
मुझे आवा-गमन में बार बार रखना ॥३

◎ ◎ ◎

मेरा स्वर्ग

चारों ओर मुझे दिख भावनायें दीखती हैं
है न कुछ लोग देवताओं के निवास का
सुनता हूँ - इन्द्रका नन्दन भी सजाती वहाँ
नाम भी नहीं है वहाँ शोक - रोग - त्रास का
किन्तु हे पितामह! बताओ तो मुझे, है कुछ
तुम को पता क्या उस मन के उल्लास का
गिर जाने पै भी फिर उठने से होता है जो
जाने रस कैसे उस ह्रास औ विकास का ॥४

◎ × ◎ × ◎

जानता हूं - जग में संयोग है वियोग भी है
और साथ रहता है दुःख - सुख - कुछ भी।
और मानता हूं - सुख यहां का अभाव ही है
हंसते अभी जो लोग, रोते दीखते अभी
किन्तु दुःख भार में रोने ही देना मुझे
सहस के भी नैराश्य रे रहे वैराग्य! जाना न कभी
पार जो लगूंगा, हर्ष विजय का होगा और
डूबूंगा तो रस सारा लोगे मुझे सभी ॥५

[illegible]

भिक्षा तत्त्व

दिल क्या चाहा करता है (श्री रामेश्वर जी 'प्रकाश')

अरे ! शून्य नीरव निशीथ में
दुखिया की करुणा के साथ
किसी अतृप्त वासना से बद्ध
फैला करके अपने हाथ
भिक्षा लेकर रोकर हंसकर
यह हाहा करता है।

× × ×

अरे ! प्रतीक्षा भी करते हो
पर विश्वास नहीं रखते हो
आना क्या स्वागत होना है
जाना क्या सोना रोना है
मरी भीत हैं अन्तस्तल में
कैसे दिल माया करता हो।

आम्र-वृक्ष

(श्री बलदेव जी १३)

तरुवर कहो तो कौनसी है यह तपस्या तेरी
इतने विराम से जो बालों को पकाये हो,
लूट २ खाई सब ओर यह सोच मानो
एक २ अंगुली में फल को उगाये हो।
लट्ठा चढ़ें जो कभी तेरी इन डालियों पै
एक २ लड़के को जान से भी प्यारे हो;
कूदते हैं बाल बहुतेरे डाल फोड़े तेरे
इस हेतु इतने क्या डाल को संभारे हो ॥१॥

\+ + +

बूढ़े दादा झोलियों में कूदते हैं फांदते हैं
तेरे बाल नोच लेते तेरे बाल खाते हैं,
अधम मचाते झूलते हैं कभी फिर
तेरे आम बार २ नीचे टपकाते हैं।
तू भी अंगुली को पकड़ाता बार २ उन्हें
को भी तेरे सरक २ ऊंचे चढ़ जाते हैं;

आम्रवेदि

कोई बांह खींचते हैं कोई स्कन्ध चढ़ जाते
कोई तेरे हाथ पकड़े ही झूल जाते हैं ॥२

\+ + + +

तुम भी तपस्वी बन हाथों को पसारे नीचे
पत्र अब शेष को ही लिये चले जाते हो
अग्नियों कि ज्वाला भड़काने को ही बार २
आज्य रस घी की बून्द टपकाते हो
ऊंचे भी खड़े जो उपदेश सुनने के तुम
नीचे झुके हमें नम्रता सिखाते हो
कितने सुने हैं मीठे २ राग बार २ तूने
तभी तो रसाल रूपी राग दुलराते हो ॥३॥

\+ + + +

कहो २ कौन हो तपस्वी वृक्ष हाड़ले दधीची
को
ऊपर पै सिर के धर एक टांग पे खड़े हो

फूल

कितने ही युग बीते कर कर साधना को
कर तन मन धन तुम भू पै खड़े हो।
आचार्य सब हैं जो पढ़े वेद के पुनीत
मन्त्र उन को ही रटने में कब से ही अड़े हो;
धन्य २ तरु राज तुम को प्रणाम मेरा
धीरता निदाघ के भी सुख से जो खड़े हो ॥४॥
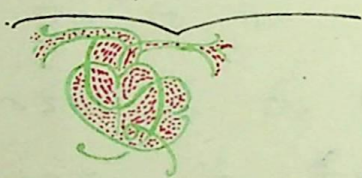
वन फूलों की दरबार लगा, जैसा न कभी देखा न सुना,
इस निर्जन घाटी में फूलो! क्यों है यह तुमने स्थान चुना।
इतने फूलों का नामों ने जपने में भी न लिया सपना
हर डाली लेकर फूल खड़ी, इस मेले में अपना अपना॥

(श्री वंशीधर जी विद्यालंकार)

जाओ

कैसी रटते हो रट आओ
या कोई परिचय बतलाओ
हूँ कितनी बार कहा जाओ
जाओ जाओ निष्ठुर जाओ

जब कोई तिमिर घन में फंसता
भीतर रोता बाहर हंसता
भूल भूल कर इन की डगर
में, टूटा मेरा जीवन तार

कहूँ कहूँ कह कर मत तरसाओ
गीत प्रलय के कोकिल गाओ
हूँ कितनी बार कहा जाओ
जाओ जाओ निष्ठुर जाओ।

रस चूस लिया पथ अलियों ने
मन किया खिलना कलियों ने
फंस ढेले ढकीले ढेलियों में
फिर मिला धूल की गलियों में

उफ अब चुकाएँ मत उकसाओ
राख बची है मत सुलगाओ
है कितनी बार कहा जाओ
जाओ जाओ निष्ठुर जाओ

सोना चांदी टंके कलियों में
और फांसी सजी फलियों में
जग के फूल घिर शूलों के
उलझा तन मन की भूलों से

भटक चुकी है मत भटकाओ
बन्द किया दर न खटकाओ
है कितनी बार कहा जाओ
जाओ जाओ निष्ठुर जाओ।

ईश छटा निराली है

ईश छटा निराली है

सांध्य सलिल रवि रश्मि प्रभा से
सूरज की हलकी र आह से
नहीं प्रकम्पित दीप्ति शिखा से
निकली है यह लाली लाली

शुभ्राकाश के नीलाम्बर पर
या माता के विशाल भाल पर
नहीं अङ्गुलों की प्याली पर
घन घोर घटा है काली काली

झंझावातों के झोंकों से
या दुःखियों की उन आहों से
नहीं जलद के भीषण रव से
झूमत झूमत आरी आरी

घन पटली सी बरस रही है
शिशुओं का मन मोह रही है
नहीं, भावुक को जोह रही है
भरती जाती नाली नाली

रिमझिम रिमझिम के रुकने पर
टपटपर के टिकने पर
भीनी मन्द पवन चलने पर
पञ्छी कूजत डाली डाली

[illegible]

(ले- [illegible])

उषा काल की नव किरणों से, उज्वल बहुत गगन का।

इधर सुन्दर दीर्घ वृक्षों से, अति मनोहर उपवन का।

अञ्जलि अपनी अपनी लेकर, कुसुम पराग मनाती।

बाँटे बढ़ाते विश्व जगत की, प्राणप्रद समीरण की।

वायु वेग से झुक २ पौदे, अपना शीश नमाते हैं।

शाखाओं से फूल फेंक कर, अलि निज दल जाते हैं।

स्वागत करके पूज्य देव का, निज अर्घ चढ़ाते हैं।

झूम २ कर जोर २ से, उन्मत्त बन जाते हैं।

२८.

आग-

आग

जंगल रही - क्या कहते हो - आग ?

क्यों उद्विग्न हो रहे ऐसे,

है अपना यह भाग !

नहीं ज्ञात, क्यों - वह जलाते,

शीतल अमृत ला सकते

जिस से आग, यही भावना में,

बन जाके अनुराग ?

डर है तुम्हें भस्म होने का

इस वैभव, धन, के खोने का,

किन्तु क्रान्ति से शान्ति जगत में

बहुधा उठती आग ।

माना इसे बुझा दोगे तुम,

किन्तु अधिक उलझा दोगे तुम,

इस नाते को, लाख लगोगे,

रक्तपात का दाग़ !!

जल रही — क्या कहते हो — आग ?

अभिसार

(श्री सोमदेव जी वं०)

चल रे क्षितिज के पार

रात निकट है काल निकट है कर ले कुछ तय्यार।

कार्य रुका है काम अड़ा है ले कर को तलवार।

बीच भार है मोह बड़ा है पथ में पाँव न धार।

झाड़ अड़ा है प्रेम गड़ा है दे दो इन को जार।

ज्वार है आती लोभ है बादी ले चप्पू का पार।

जहां पवन या धूप का होता नहीं प्रवेश

निश्चय ही जाता वहां कोई वैद्य - विशेष ॥

शोणित रखना चाहिये सदा सर्वदा शुद्ध ।

वह अशुद्ध हो व्याधियां करता है उद्बुद्ध ॥

x x x x x

रहन सहन रक्खो सरल , करो वायु - सहवास

होगा जीवन शक्ति का निस्सन्देह विकास ॥

नियम करें जो आप को सुख सन्तोष प्रदान

यदि सदैव चलते रहें उन का शासन मान ॥

x x x x x

टहलो अथवा सेज पर जाकर लो विश्राम

पर , भोजन कर के त्वरित करो न कोई काम ॥

आयुर्वेद

खा पीकर तत्काल ही चलना है अविवेक।
इस से पाचन कार्य में पड़ता है व्यतिरेक॥

× × × × ×

कसरत करनी चाहिये नियम बांधकर रोज।
अंगों में बल आयेगा और बदन पर ओज॥
नियत समय पर कीजिये भोजन दोनों बार।
असमय का भोजन बुरा, करता है बीमार॥
याद रहे जिस अङ्ग से लिया न जाता काम
उस का बल स्वयमेव ही होजाता है क्षाम॥

(श्री नीलकण्ठ जी विद्यालंकार)

संचय

युवावस्था की निरंकुश स्वच्छन्दता ही उच्छृंखलता है। वह समय मनुष्य के लिए कठिन अग्नि परीक्षा का है। न जाने ईश्वर भी जीवन में यह इतनी बड़ी परीक्षा क्यों लेता है। क्या उसे इसमें आनन्द आता है। नहीं उसका तो प्रत्येक कार्य किसी शुभ उद्देश्य और कल्याण के हेतु से ही होता है। इस परीक्षा में उत्तीर्ण रहने वालों को सुखी रहने का शुभाशीष देकर वह प्रफुल्लित होता और अनुत्तीर्ण व्यक्तियों को अपने कर्मों के सहारे जीवन नौका खेने के लिए छोड़ देता है। उनकी यह अवस्था देखकर उसे दुःख तो अवश्य होता होगा पर वह तो स्वयं ही सुख दुःख रहित है।

× × ×

स्वार्थ के विचारों से प्रेम के पवित्र तथा स्वाभाविक राज्य को कलुषित न करो।

× × ×

जब जीवन किसी आदर्श की उपासना करने लगता है तभी उसकी सार्थकता से भेंट होती है। तभी वह उसकी वास्तविकता का अनुभव कर सकता है। इसलिए जीवन को आदर्शमय हो जाने का अवसर देना उसे पूर्णता की ओर ले जाना है। प्रत्येक आदर्श की परिकल्पना की ही कुछ सीमा [illegible] लेना ही उसकी इच्छा के लिए झुकना है और अपने आप को उसके योग्य बनाना है।

३९.
प्राकृतिक ~ चिकित्सा

मुख से श्वास लेना

(लेखक - अभिव्रत)

मनुष्य की सब से बड़ी बुराई ये है कि वह ईश्वर के दिये हुवे अच्छे से अच्छे और श्रेष्ठ साधनों का उचित रीति से उपयोग नहीं करता और इसीलिये उनका श्रेष्ठ लाभ नहीं उठा सकता। यदि ऐसा न होता तो सम्भवत: इस संसार में नाना विध कष्ट आधियां और व्याधियां बिलकुल न होतीं। खाना पीना तो फिर भी मनुष्य, संसार में आने के काफी दिन बाद माता पिता से सीखता है और फिर उसके सम्बन्ध की पाचन आदि क्रियायें मनुष्य की अनभिज्ञता में होती हैं - इसलिये इस में यदि मनुष्य से गलतियां हो भी जांय तो किसी हद तक क्षम्य हो सकती हैं; परन्तु जन्म लेते ही बिना किसी के सिखाये स्वभावतः मनुष्य शरीर के साथ लग जाने वाली और उसके सामने प्रकट रूप में स्वभावत: होती रहने वाली श्वसन क्रिया में भी यदि वह अशुद्धियां करे तो वस्तुत: आश्चर्य की बात है। यह पुस्तक लोग आश्चर्य करते हैं कि २००

पृष्ठ से श्वास लेना

में से मुश्किल से २० मनुष्य बिलकुल उचित और स्वाभाविक रीति से श्वास लेते हैं। इसी का परिणाम है कि आज श्वास की न जाने कितनी बीमारियां संसार में प्रसिद्ध हैं और न जाने प्रति वर्ष उनकी List में कितनी और जुड़ती जाती हैं। खांसी दमा Pneumonia क्षय आदि भयंकर बीमारियों से कौन परिचित नहीं हैं परन्तु ऐसी अवस्था के होते हुवे भी दिन रात इन रोगों के कष्टों को अनुभव करते हुवे भी इस ओर ध्यान का न जाना मनुष्यों की शारीरिक उन्नति के प्रति उदासीनता का स्पष्ट द्योतक है। अस्तु! श्वास क्रिया की प्रधानता का कुछ अनुमान इस बात से हो सकता है कि शरीर की सब शक्तियों के आदि स्रोत रक्त का जितना भी सामर्थ्य है वह केवल श्वास प्रश्वास की स्वच्छ अवस्था पर ही निर्भर है। रक्त जैसे शक्तिमान पदार्थ को यदि श्वास निश्वास का 'हरकारा' या 'सेवातक' कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। वस्तुतः यदि रक्त बिना oxygen शरीर में रहे या circulate करे तो वह कितनी घातक वस्तु होगी यह बतलाने की आवश्यकता न होगी।

ऐसी अवस्था में यह एक विष है किसी प्रकार कम न होगा। इस oxygen को रक्त के माध्यम से सारे शरीर में भेजने वाला श्वास संस्थान ही है अतः इसका ठीक रहना मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये अधिकतम आवश्यक है। फिर रक्त के द्वारा आये हुवे शरीर के मलों को शरीर से बाहर निकालने में श्वास संस्थान भी कितना अधिक प्रभावशाली है यह किसी से छिपा नहीं है। अतः इस दृष्टि कोण से भी मनुष्य में इस संस्थान का स्वस्थ रहना अनिवार्यतया आवश्यक है
कौन कौन सी त्रुटियां हैं जिनको करके कि मनुष्य अपने इस सर्वतोत्कृष्ट संस्थान को त्रुटि ग्रस्त कर लेता है यह अपने आप में एक स्वतंत्र तथा विस्तृत विषय है। इन्हीं त्रुटियों में से मुख से श्वास लेना भी एक बड़ी भयानक त्रुटि है और आज इसी पर ही मैं अगली पंक्तियों में संक्षेप से कुछ प्रकाश डालने का यत्न करूंगा।

मुख से श्वास लेना अब इतना common होगया है कि कई लोग इस बात को जानते भी नहीं कि नाक का काम श्वास लेने का भी है। वे नाक का काम केवल सूंघना ही समझते हैं। ऐसा समझना सरासर भ्रम है। नाक की cavity का निचला है भाग श्वास लेने

मुख से श्वास लेना

के लिये है और सिर्फ उपरला ½ भाग फूंकने में आ जाता है

जो श्वास हम लेते हैं उसमें अवश्य नीचे लिख
से ३ गुण अवश्य होने चाहिये। सबसे प्रथम स्वच्छता
द्वितीय आर्द्रता और तृतीय उष्णता अब क्रमशः मुख से
श्वास लेने की हानियों तथा नाक द्वारा श्वास लेने के
लाभों पर दृष्टिपात करेंगे और इसी प्रसंग में यह भी देखेंगे
कि अन्दर जाने वाली वायु में उपरोक्त तीनों गुण कौन
मार्ग पैदा कर सकता है।

मुख से श्वास लेने के हानियां

सामान्यतः खाने पीने बोलने हंसने और जंभाई लेने आदि
कुछ विशेष अवसरों के अतिरिक्त मुंह का खुला रहना अनुचित है।
मुंह खुला रखने की आदत वाला मनुष्य जब सो रहा होता है
तब उसके मुंह में मक्खियां तथा अन्य कई प्रकार के गन्दे जीव
जन्तु आनन्द लेते हैं। यह बात कितनी घृणास्पद है यह
तथा लज्जाजनक है यह सामान्य बुद्धि का मनुष्य भी कल्पना
कर सकता है। अस्तु।

जो लोग मुख से श्वास लेते हैं वे एक प्रकार से
गन्दी धूलि युक्त ठण्डी और खुश्क हवा को सीधे अपने फेफड़ों
तक पहुंचा देते हैं। इससे स्वभावतः फेफड़े irritated

हो जाते हैं। परिणाम स्वरूप मनुष्य को खांसी आदि की शिकायत हो जाती है जो कि पीछे से बढ़ कर और भी भयंकर रोगों का रूप धारण कर सकती है।

मुंह खोल कर श्वास लेते हैं वायु में उपस्थित और सदा हमारे शरीर में प्रवेश की ताक में रहने वाले कृमि सीधे lungs में या saliva के साथ मिल कर और निगले जाकर alimentary canal में पहुंच जाते हैं। और वहां जाकर अपने घातक प्रभावों को भलि भांति दिखलाते हैं। मुंह से श्वास-लेने वाले लोग एक प्रकार से रोग कृमियों को निमंत्रण देकर बुला रहे होते हैं और यही कारण है कि वे चेचक, खसरा आदि फैलने वाले रोगों से औरों की अपेक्षा जल्दी आक्रान्त हो जाते हैं।

मुंह खोल श्वास लेने वालों की जीभ तथा गला आदि अन्य मुखान्तर्गत इन्द्रियां तथा सूखे रहते हैं। और उनके स्वस्थ रहने के लिये जो आर्द्रता आवश्यक है उसके न रहने के कारण उनमें कई प्रकार के रोग या उपद्रव पैदा हो जाते हैं।

मुंह खुला रखने से जहां मनुष्य के स्वास्थ्य पर इतना बुरा प्रभाव पड़ता है वहां साथ ही साथ उसके चेहरे की खूबसूरती पर भी इसका अनिवार्य दुष्प्रभाव पड़ता है। मुंह खुला रखने से जबड़ों का स्वरूप

मुख से श्वास लेना

सदा खुले पर लगातार पड़ते रहने के कारण उनका फैलाव वृद्धि के कारण व symmetrically होता है जिससे कि नए दांतों के लिए स्थान करते हुए दांतों के लिए उनमें पर्याप्त स्थान रहता है और क्रम पूर्वक पंक्तियों में स्थान पृथक पृथक रहते हैं और चेहरा स्वाभाविक स्वस्थ स्थूल सुन्दर बनता है।

परन्तु मुंह खुला रखने से जबड़े स्वाभाविक दिशा में फैलने से रुक जाते हैं। दबाव न पड़ने के कारण उनकी चौड़ाई की दिशा में वृद्धि नहीं होती जिससे उनमें पुराने दांतों के बढ़ने के लिए स्थान नये दांतों के आने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं रहता। परिणामतः चेहरा लम्बोतरा और नोकीला सा हो जाता है। दांत टेढ़े मेढ़े पड़ जाते हैं और उनकी सफाई ठीक प्रकार से न हो सकने के कारण मसूड़ों में मवाद (Pyorrhoea) जैसी भयंकर और दुश्चिकित्स्य बीमारी हो जाती है। दांतों में फंसी organic मैल के fermentation से अम्लीय पदार्थ उत्पन्न होकर दांतों को खाने लगते हैं। सबसे ले इस प्रकार से दांतों का [illegible] हो [illegible] होता है और इनसे ठंडी हवा के लगने से वे और भी शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार चेहरे की, स्वाभाविक सुन्दरता

मुख से श्वास लेना

Mucous Membrane में स्थित छोटे 2 रोंगटियां अपने अन्दर से ~~निकल~~ निकलने वाले चिकने व चिपचिपे पदार्थ से रक्षा करते हुए उस को तैयार करके नाक की अन्दर की दिवार पर डालती रहती हैं। यह उस चिपचिपा लसदार पदार्थ साफ तथा गरम हो जाते हैं।

अब जो वायु नाक में से गुजर कर अन्दर जाने लगती है उसमें उपस्थित धूलि के कण तथा रोग कृमि इन बालों में अटक कर और - इस पदार्थ उस में चिपक कर वहीं रह जाते हैं और उच्छ्वास के साथ या नासमल के साथ बाहिर से बाहर कर दिये जाते हैं। इस प्रकार श्वास संस्थान इन धूलि के कणों तथा रोग जनक कृमियों से होने वाली हानियों से बच जाता है। साथ ही साथ वायु अन्दर जाते समय इस उस के संपर्क से आर्द्र तथा उष्ण भी हो जाती है। इस प्रकार स्वच्छता, उष्णता तथा आर्द्रता इन तीनों प्राकृतिक गुणों से युक्त वायु श्वास संस्थान में प्रवेश करता है जिससे श्वास क्रिया का लाभ इन तीनों प्रक्रियाओं के होने से पूरा 2 मिल जाता है। किन्तु यदि मुख से श्वास लिया जाय तो इनका फायदा कुछ नहीं उठ सकेगा।

उपर्युक्त

यह निर्विवाद अनुभव की बात है कि नाक से लिया श्वास मुख से लिए श्वास की अपेक्षा अधिक गहरा और अधिक लम्बा होता है। इसके विपरीत मुख से लिया हुआ श्वास छोटा और उथला होता है। इस लिए नाक से श्वास लेने वालों की छाती के Respiratory Muscles को अधिक कार्य करते, तथा Lungs (फेफड़ों) को प्रतिक्षण फैलने और सिकुड़ने का पर्याप्त अवसर मिलता रहता है। इस प्रकार छाती की रचना सुन्दर और सुडौल बनी रहती है और इस सुन्दरता के कारण ही Lungs (फेफड़े) भी स्वस्थ बने रहते हैं। मुख से श्वास लेने वालों की छातियां बाहर तथा अन्दर दोनों ओर से विकृत हो जाती हैं। अर्थात् उनकी छाती कम उन्नत होती है क्योंकि उनके फेफड़े कम काम करने के कारण विकसित नहीं हो पाते हैं और इसीलिए उनके फेफड़े मजबूत भी नहीं हो पाते हैं। नाक से श्वास लेने वालों का पेट जल्दी नहीं फूलता और उनके फेफड़ों और छाती की पेशियों को फैलने तथा सिकुड़ने का काफी अवसर होता है और उनकी लम्बाई इसके कारण ही रुद्ध नहीं होती है।

(ब्र० वासुदेव जी ७४)

नाम सं.- वासक:, आटरूषक:, वृष:, वैधमाता

हि. बांसा अड़ूसा   नाम कुं. लैटिन. Adhatoda

बांसा एक ऐसा पौधा है कि जो जलीय प्रदेशों प्राय: मिल जाता है परन्तु पर्वतीय प्रदेशों में यह बहुत अधिक पाया जाता है। हिमालय की तराई के प्रदेशों में यह बहुत पाया जाता है इस का छोटा सा ४-५ फी. का पौधा होता है इस के पत्ते १०-१५ सें. मी. लम्बे होते हैं और ४ सें. मी. चौड़े होते हैं। आगे से सिरे पर बहुत साफ़ नोक निकली होती है। इस के पत्ते का पृष्ठ चिकना होता है। इस का किनारा कहीं से कटा हुआ नहीं होता। इस के पत्तों पर कुछ अस्वच्छ सी झुर्रियां होती हैं जिन से कि ये बहुत जल्दी पहिचाने जाते हैं। इस के पत्तों में से चाय जैसी गन्ध

आती है और इस को चखें तो बहुत कड़वा स्वाद होता है

इस के पत्तों में तीन तत्व होते हैं

1. Vasicine
2. Adhatodic acid
3. Ammonia

गुण - रस - तिक्त गुण - लघु हिम

पाक - मधुर वीर्य - शीत दोष - वातकफहर

प्रभाव तथा उपयोग —

I बाह्य - यह क्यों कि शीत वस्तु है इस लिये इस के पुष्पों का कल्क बना कर आंखों पर बांधने से नेत्राभिष्यंद (Conjunctivitis) रोग शान्त हो जाता है। रोग की होने वाली पीड़ा भी शान्त हो जाती है। इस को जलाया जाय तो इस का धूंआ कृमिहर होता है।

अन्तः प्रभाव तथा उपयोग - वांसा एक उत्तम पित्तहर तथा कफहर चीज़ है। इस के पत्ते तथा जड़ श्वास नालियों में जमे हुए कफ को पतला कर बाहिर निकाल

देते है इस लिये उत्तम कफ नि:सारक है। इस के साथ ही श्वास नालियों मे हुए मांस पेशियों के spasm को हटाती है इस लिये यह antispasmodic है। पित्त हर गुण के कारण यह रक्तस्राव को बन्द कर देती, पित्त प्रकोप से निर्बल हुए तेज हुए हृदय को ताकत देती है इस लिये यह रक्त स्तम्भक तथा हृद्य भी है।

वासे के पत्तों का स्वरस यदि कफ पित्त ज्वर मे दिया जावे तो उस से बढ़ा हुआ बुखार उतर जाता है आंखो मे होने वाली लालिमा हट जाती है इस प्रकार रोगी ज्वर मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि रक्त मे पित्त प्रकोप के कारण गुदा से मूत्रमार्ग से नासिका से रक्तस्राव हो रहा हो शरीर के अन्दर गर्मी मालूम हो रही हो तो यह रोग ~~पित्त प्रकोप को~~ वासा स्वरस मे मधु ~~मधु~~ मिश्री मिला कर देने से शान्त हो जाता है। यदि रक्त पित्त या नासा रक्तस्राव बार २ हो जाया करता हो तो वासा कूष्माण्ड खण्ड, वासा खण्ड या वासा घृत का सेवन करने से बहुत

लाभ होता है। श्वास रोग में वासा का सेवन किया जावे तो श्वास बहुत जल्दी अच्छी हो जाती है। साधारण कफ जन्य या कफ पित्त जन्य श्वास में वासा पानक का सेवन करे तो खांसी को तुरन्त लाभ होता है। पुरानी खांसी जिस का बहुत इलाज किया गया हो और अच्छी न होती हो उस में इस का चमत्कारी प्रभाव देखा गया है और रोगी सुख चैन से रात को सोता है।

क्षय रोग के लिये वासा बहुत ही उत्तम चीज़ है। क्षयजन्य श्वास में वासावलेह का सेवन किया जावे तो रात को उठने वाली तीव्र क्षय जन्य श्वास बन्द हो जाती है। रक्त में जैसे कि क्षय की तृतीयावस्था में या द्वितीयावस्था के अन्त में थूक के साथ रक्त आता है - वासादि पानक (वासा डाक्षा मुलहटी समान २ ले क्वाथ बना कर क्वाथ के समान शर्करा लेकर पानक बनावे) का सेवन करे तो रक्त आना बन्द हो जाता है साथ ही इस पानक के सेवन करने से क्षय रोगी दीर्घजीवी

शक्ति वाले हो जाने के बाद भी उस में फिर से शक्ति आने लगती है और रक्त जबरदस्त तात्कत से क्षय रोग को हटाती है ~~किस पावक~~ यह पावक ऐसा उत्तम है कि इस कई रोगी मनुष्यों को लाभ हो चुका है किसी ने कहा है —

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदसि ।

वासे के पत्ते का धूआं यदि लिया जावे तो श्वास रोग में बहुत लाभ होता है। यह श्वास नालियों में शोथ तथा Spasm दोनों को हटाता है। इसी प्रकार अन्य रोग जिन में पित्त कफ का प्रकोप हो सभी में इस के प्रयोग का स्वाद रखते या इस से बने हुए अवलेह प्रयुक्त करने चाहिये। ~~इसी प्रकार~~ कोई मनुष्य पिपासा के कारण मूर्छित हो गया है तो उस वक्त इस का सेवन करने से भी रोगी को शान्ति मिलती है तथा मूर्छा हट जाती है। इस प्रकार कफ तथा पित्त इन दोनों के हरने के ~~कारण~~ गुण के आधार पर इस का अनेक जगह उपयोग किया जा सकता है और अनेक प्रयोग बताये जा सकते हैं।

मक्खन में रोगजनक कृमि

ए० सार्थरो नामक स्ट्रेसबर्ग के प्रोफेसर ने यह सिद्ध किया है कि मक्खन विषमज्वर का मुख्य कारण होता है। उनका कहना है कि मैंने भिन्न २ तरह के मक्खन देखे हैं जिनमें विषमज्वर के कृमि पाए गये हैं। इसका कारण यही है कि मक्खन में जितना शुद्ध होना चाहिए उतना नहीं होता। मक्खन में कितने ही प्रकार के अन्य सूक्ष्म कृमि होते हैं जिनसे उत्पन्न होने वाले दूसरे रोग भी बहुत हैं। मक्खन खाने वालों को मक्खन न खाकर उसका घी बनाकर खाना चाहिए जिससे उसके जन्तु उसमें ही जल मर जायेंगे।

—एक पत्रिका से अनूदित

विजया

(लेखक - शशिकान्त)
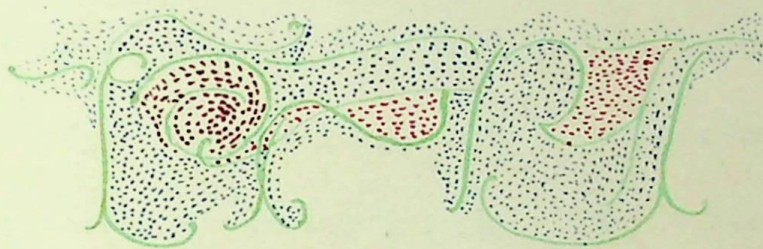
<u>नाम सं.</u> - शक्राशन, विजया, त्रैलोक्य विजया, आदि।

Latin - cannabis Indica.

English - Indian Hemp.

<u>प्राप्ति तथा वर्णन</u> :- पौराणिक लोग ऐसा मानते हैं कि जब प्रारम्भ में मंदराचल पर्वत से समुद्र मथा गया था तब अमृत के रूप में इसकी उत्पत्ति हुई थी। अत: वे अब तक इसे अमृत तुल्य समझते हैं। इसी कारण बहुत से पौराणिक हिन्दु लोग उत्सवों में निर्विघ्न कार्य समाप्ति के लिये - सब से प्रथम इसका पान कराते हैं।

आजकल यह प्राय: सारे भारतवर्ष में पाई जाती है। बहुत से स्थानों पर इसकी खेती भी की जाती है। पञ्जाब की ओर इसकी खेती उत्तम होती है।

यह एक प्रकार का क्षुप है, इसके फूल हरे गुच्छेदार होते हैं इसके पत्ते नीम के पत्तों के समान लम्बे और कंगूरेदार होते हैं -

परन्तु नीम के पत्तों से कुछ छोटे होते हैं। प्रत्येक डण्डी पर तीन पाँच अथवा सात पत्ते होते हैं। पुरुष और स्त्री भेद से भंग दो प्रकार की होती है। पुरुष जाति के वृक्ष से पत्ते लिये जाते हैं और स्त्री जाति के वृक्ष से गांजे की उत्पत्ति होती है। दोनों जाति के वृक्ष एक ही स्थान पर पैदा नहीं होने देते क्योंकि दोनों के एक ही स्थान पर उत्पन्न होने से जटा नहीं बांधी जा सकतीं अतः स्त्री जाति के वृक्षों के साथ उत्पन्न पुरुष जाति के वृक्ष छोटी अवस्था में ही उखाड़ दिये जाते हैं। इसका वृक्ष ५ फुट से ऊंचा नहीं होता और पत्ते १ इन्च लम्बे होते हैं। इसकी दो जातियाँ होने के कारण प्रत्येक स्थान पर भंग की खेती नहीं हो सकती है।

यह गांजा - चरस तथा भंग भेद से तीन प्रकार की है। स्त्री जाति के वृक्ष से 'गांजा' उत्पन्न होता है। 'चरस' एक प्रकार का Resin है जोकि इसके पत्तों को किसी चीज़ से रगड़ कर प्राप्त किया जाता है। इसके पत्तों को घोटकर जो पेय वस्तु बनाई जाती है उसे 'भंग' कहते हैं।

<u>विश्लेषण</u> :- भांग में एक क्रियाशील तत्व होता जिसे - Cannabis Resin कहते हैं।

विजया के योग :— (i) विजयापत्र या बीज चूर्ण :- पत्तों को घी में सेक तथा बीजों को दूध में उबालकर बनावें। मात्रा ४ से ८ ग्रेन। चरस की मात्रा $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती, गांजे की मात्रा $\frac{1}{2}$ से २ रत्ती, भांगपत्र की मात्रा ४ रत्ती से २ माशा, भांग बीज की मात्रा १ से २ रत्ती तक है।

इसके सिवाय मात्रा मनुष्य की सात्मता पर भी निर्भर है। अनभ्यस्त मनुष्य थोड़ी मात्रा से भी शीघ्र प्रभावित हो जाते हैं। अभ्यस्त मनुष्यों को इसकी अधिक मात्रा से भी कुछ नहीं होता।

(ii) विजया रसक्रिया :- विजयापत्र बीजादि को ९०% की मद्यसार में घोल, मद्यसार को ऊर्ध्वपातित करके बनाते हैं। मात्रा - $\frac{1}{4}$ से १ ग्रेन।

(iii) विजयासव :- ९०% की १००० ग्रेन मद्यसार में ५० ग्रेन विजया रसक्रिया मिलाकर बनाते हैं। मात्रा ५ से १५ बूंद।

(iv) जातिफलादि चूर्ण :- यह इसका एक मुख्य योग है। मात्रा १५ से ३० ग्रेन। रोग - ग्रहणी - अतिसार - कास - प्रतिश्याय - श्वासरोग।

(v) आनन्दमोदक :- मात्रा १ से ३ माशा। रोग - मन्दाग्नि ग्रहणी, शुक्रमेह, क्लीवरोग, अपस्मार, उन्माद तथा वात रोग।

गुण :- रस तिक्त, गुण लघु रूक्ष, वीर्य उष्ण, पाक कटु, दोष कफ-वातहर।

<u>बहिः प्रभाव</u>:- भांग बहिः प्रभाव में कुछ शूलशामक हो[illegible] है। इसके लेप आदि लगाने से शूल मन्द पड़ जाती है।

<u>अन्तः प्रभाव</u>:- यह शरीर के भिन्न २ अंगों पर भिन्न २ प्रकार से होता है।

आमाशय तथा अन्न प्रणाली पर:- थोड़ी मात्रा में यह क्षुधा वर्धक है और पाचन शक्ति को भी बढ़ाती है। यह अतिसार तथा प्रवाहिकाहर है किन्तु मलबन्धक नहीं।

मस्तिष्क पर :- इसका विशेष प्रभाव मस्तिष्क पर होता है। यह थोड़ी मात्रा में हर्षजनक, मध्यम मात्रा में प्रलापक और अति मात्रा में निद्रा जनक है। प्रथमावस्था में खाने वाले को शारीरिक और मानसिक परिश्रम का स्मरण नहीं रहता, वह बहुत प्रसन्न चित्त प्रतीत होता है और उसे समय और व्यक्ति का ठीक २ ज्ञान नहीं रहता। दूसरी अवस्था में अर्थात् भांग की कुछ अधिक मात्रा को लेने पर मादक प्रभाव होता है। मनुष्य प्रत्येक बात पर खूब हंसता है और उच्छृङ्खल होकर बोलता है। यदि अधिक मात्रा को लेवे तो मनुष्य निद्रित हो जाता है और उसका शरीर भी शिथिल हो जाता है।

वातनाड़ियों पर:- मस्तिष्क के अतिरिक्त वातनाड़ियों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इसके प्रभाव से संज्ञावाहिनियाँ निस्तेज हो जाती हैं जिससे त्वचा पर संज्ञानाशक प्रभाव पड़ता है। और-

शरीर की थूल न्यून पर लक्ष्य हो जाती है। अतः भांग थूलहर भी है। यद्यपि यह अफीम और धतूरे की अपेक्षा निर्बल गुणवाली होती है तो भी मांसपेशियों के तीव्र उद्वेग और आक्षेपों को शान्त कर देती है। जिससे आक्षेप धनुस्तम्भ तथा अन्य वात रोग शान्त होते हैं।

हृदय तथा रक्तसञ्चार पर :- इसका हृदय पर कुछ अनिश्चित सा प्रभाव होता है। कभी नाड़ी (Pulse) की गति तीव्र हो जाती है और कभी मन्द पड़ जाती है। इसी कारण Blood pressure कभी बढ़ता और कभी घटता है।

श्वास पर :- पहले श्वास तीव्र हो जाता है और पुनः घट जाता है।

शरीर के ताप परिमाण पर :- भांग के खा लेने पर जागृति की अवस्था तक ताप परिमाण बढ़ता रहता है और निद्रा की अवस्था आ जाने पर घट जाता है।

उत्पादक अंगों पर :- थोड़ी मात्रा में Aphrodisiac होने पर इसका प्रभाव होता है। थोड़ी मात्रा में यह वाजीकरण भी है।

मांसपेशियों पर :- थोड़ी मात्रा में motor activity बढ़ जाती है और अधिक मात्रा में muscles के Relaxation के कारण motor activity घट जाती है।

विजया

<u>बहिरुपयोग</u> :— अर्श में होने वाली गुदशूल या शोथ पर अलसी और विजयापत्र की गरम पुल्टिस बांधने से आराम आता है। कर्ण शूल में इसका गरम स्वरस कान में डालते हैं। निद्रा लाने के लिये पांवों के तलवों पर इसके कल्क का लेप किया जाता है। दूध में भंग पीसकर अर्श के मस्सों पर लगाने से भी आराम आता है। भांग का पूरा क्षुप पीसकर नवीन घाव में लगाने से शीघ्र आराम होता है। किसी भी चोट की शोथ शूल को मिटाने के लिये इसके कल्क का लेप किया जाता है।

<u>अन्त: उपयोग</u> :— आयुर्वेद शास्त्र में दो प्रकार के रोगों की औषधियों में इसका व्यवहार किया जाता है। उपरामक परिपाक और रतिशक्ति को बढ़ाने के लिये जो औषधियाँ बनाई जाती हैं उनमें भांग अधिक डाली जाती है। आजकल बहुत से Doctors के परीक्षण करने पर इसका एक अद्भुत गुण प्रकट हुआ है कि धनुस्तम्भ रोग में इसका धुँआ पिलाने से शनै: २ आक्षेप कम हो जाता है और रोगी अधिक दुर्बल नहीं होने पाता तथा कुछ काल इसके धुँए का सेवन करने से रोग छूट जाता है।

Doctor कास्तानि ने पहले यह परीक्षण किया था उसने ६ रत्ती भंग तमाखू के पत्तों में रखकर हुक्के द्वारा अपने ६ रोगियों को धुंआ पिलाना आरम्भ किया। इसके पश्चात् Doctor G. C. लूकस ने कई परीक्षण किये और देखा कि (१) धुंआ पीने से आक्षेप थोड़ी देर

तक ठहरता है (ii) बीच २ आक्षेप बहुत समय के पीछे होता है (iii) आक्षेप का वेग बीच २ कम हो जाता है (iv) आक्षेप का रोगी दुर्बल नहीं होने पाता (v) बार २ सेवन से आक्षेप एक साथ मिट जाता है।

इसके पश्चात् Doctor ओसागनसी ने अनेक प्रकार के रोगों में भंग का प्रयोग कर परीक्षा की थी। उनकी सम्मति है कि धनुस्तम्भ जलातंक और विसूचिका रोग की यह औषधी है। अतः बहुत से अंग्रेज Doctor इसे धनुस्तम्भ तथा विसूचिका की प्रबल औषधी मानते हैं।

इसके बाद Doctor Dymac ने धनुस्तम्भ के बहुत से रोगियों को केवल भंग से अच्छा किया और निश्चय कर दिया कि धनुस्तम्भ के लिये यह उत्तम औषधी है।

विसूचिका रोग में अफीम के समान काम करने वाली है। इन रोगों के सिवाय यूनानी वैद्य इसका प्रमेह और आमवृद्धि रोग में प्रयोग करते हैं। भुनी हुई भंग का चूर्ण शहद के साथ खाने से अतिसार-संग्रहणी और मन्दाग्नि रोग दूर होते हैं। इसके अतिरिक्त मन्दाग्नि अतिसार ग्रहणी तथा चिरस्थाई प्रवाहिका में जातिफलादि चूर्ण अधिक प्रयोग किया जाता है। भंग के देने से भूख बढ़ती है और शूल-

६०

विजया

शान्त होते हैं। चिरस्थाई उदरशूलों में विजया योग तथा रसक्रिया बहुत लाभदायक है। काली खांसी- बालकास तथा श्वास रोग में इसकी $\frac{1}{2}$ से 2 ग्रेन रसक्रिया धतूररसक्रिया के साथ गोली बनाकर देने से या जातिफलादि चूर्ण से विशेष लाभ होता है। इसके देने से शिरः शूल, उदरशूल तथा कष्टार्तवशूल रोगों के वेग घट जाते हैं। कष्टार्तव में इसकी रसक्रिया या आसव का प्रयोग किया जाता है। निद्रानाश के लिये अहिफेन के साथ इसकी $\frac{1}{2}$ ग्रेन की मात्रा भी दी जाती है। धनुस्तम्भ तथा अन्य रोगों के आक्षेपों को शान्त करने के लिये इसकी रसक्रिया $\frac{1}{2}$ से 2 ग्रेन की मात्रा में दिन में दो तीन बार देते रहें। योषापस्मार में भी हिंगु के साथ इसकी रसक्रिया की गोली बनाकर दी जाती है। स्त्रीरोग तथा शुक्रसम्बन्धी निर्बलता में इसके आनन्दकन्द आदि मिश्रण अवलेह लाभदायक होते हैं। ग्रहणी-अतिसार आदि की चिकित्सा में दिये जाने वाले बहुत से रसों को बनाने के लिये इसके स्वरस की भावना दी जाती है तथा कई धातुओं को भस्म करने के लिये भी इसके स्वरस की भावना दी जाती है।

किसी समय भांग भी आजकल की कोकीन की तरह शौकीनी के लिये प्रयोग में आती थी और विदेशी लोग इसे खाते थे।

आजकल भारतवर्ष में विशेष कर संयुक्त प्रान्त और राजपूताना में इसका बहुत उपयोग होता है। इसको बहुत से मनुष्य बादाम, सौंफ, कालीमिर्च आदि के साथ घोटकर मिश्री मिलाकर पिया करते हैं।

विष लक्षण :- यद्यपि निघण्टु में भांग को कफनाशक, ग्राही, पाचक, अग्निवर्धक, लघु तीक्ष्ण गरम पित्तवर्धक नशा तथा बोलने की शक्ति को बढ़ाने वाली लिखा है तथापि यह अधिक मात्रा में सेवन करने से विषलक्षण उत्पन्न कर देती है और उससे भी अधिक मात्रा में सेवन करने से शरीर के लिये घातक है।

इसकी अधिक मात्रा खाई जाने पर शरीर में विशेष कर कण्ठ तालु और मुख में अत्यन्त खुश्की आने से ज्ञानतन्तुओं तथा मनोवाहि स्रोतों में विकृति आ जाती है जिससे बहुत से मनुष्य पागल हो जाते हैं और कभी किसी की मृत्यु भी हो जाती है। भांग की तेजी को शान्त करने के लिये सौंफ अत्युत्तम औषधि है। अतः भांग सेवन करनेवालों को उसके मसालों में सौंफ अवश्य डालनी चाहिये।

इसके अधिक मात्रा में सेवन से सारे शरीर में tingling होने लगता है और मनुष्य प्रलाप करता है नाड़ी की गति बढ़ जाती है, पुतली फैल जाती है, त्वचा शुष्क हो जाती है तथा मूत्र की राशि बढ़ जाती है। कभी २ मनुष्य बेहोश होकर तन्द्रा की अवस्था में आ जाता है।

विजया

घातक मात्रा :— इसका Tincture ६-½ बूंद की मात्रा में और विजयासत्व ६ ग्रेन की मात्रा में घातक है। इनका अनुमान ½ घण्टे में हो जाता है।

घातक समय :— २४ से ४८ घन्टे तक है।

चिकित्सा :— (i) भांग के नशे में इमली के रस का प्रयोग करना चाहिये, इससे विष बहुत जल्दी उतर जाता है।

(ii) इसके नशे में तक्र (मट्ठा) का प्रयोग करना भी लाभदायक है।

(iii) नींद आ जाने से भी नशा उतर जाता है। कण्ठ तालु तथा मुख की खुश्की को दूर करने के लिये उन स्थानों पर घृत चुपड़ना चाहिये, और खटी का पानी या दूध, मिश्री तथा घी मिलाकर पिलाना चाहिये।

(iv) अत्यधिक नशा होने पर मक्खन, मिश्री मिलाकर खिलाना चाहिये खटाई के सेवन से भी भांग तथा गांजे का नशा उतर जाता है।

(v) अत्यधिक विष लक्षण होने पर रोगी को वमन तथा विरेचन देना चाहिये, शिर पर ठण्डे जल की धारा छोड़नी चाहिये तथा बेहोशी में अमोनिया या उसका उसका को Smell सुघांना चाहिये।

—— : इतिशम् : ——

विकल्पा -

घातक मात्रा :- इसका Tincture [illegible]
विजयासत्व ५ ग्रेन की मात्रा में घातक है। इ[illegible]
में हो जाता है।

घातक समय :- २४ से ४८ घन्टे तक है।

चिकित्सा :— (i) भांग के नशे में इमली के रस का प्रयोग करना चाहिये; इससे विष बहुत जल्दी उतर जाता है।

(ii) इसके नशे में तक्र (मट्ठा) का प्रयोग करना भी लाभदायक है।

(iii) नींद आ जाने से भी नशा उतर जाता है। कण्ठ तालु तथा मुख की खुश्की को दूर करने के लिये उन स्थानों पर घृत चुपड़ना चाहिये, और दही का पानी या दूध, मिश्री तथा घी मिलाकर पिलाना चाहिये।

(iv) अत्यधिक नशा होने पर मक्खन, मिश्री मिलाकर खिलाना चाहिये। खटाई के सेवन से भी भांग तथा गांजे का नशा उतर जाता है।

(v) अत्यधिक विष लक्षण होने पर रोगी को वमन तथा विरेचन देना चाहिये, सिर पर ठण्डे जल की धारा छोड़नी चाहिये तथा बेहोशी में अमोनिया या उसका कोई Salt सुंघाना चाहिये।

: इतिशम् :

६३.
विविधा

आयुर्वेद

जब साधारणतया बात-चीत में इस शब्द का प्रयोग करते हैं तो उससे हमारा अभिप्राय पीने वाली शराबों से ही होता है जो कि स्फूर्तिदायक गुणों से युक्त मानी जाती हैं। सब दुनियां में पीने की शराबें भी बहुत तरह की होती हैं किन्तु उन सबमें एक समानता होती है कि उनके अन्दर एक रासायनिक पदार्थ जिसे Alcohol या 'ethyl Alcohol' कहते हैं होता है। जिस प्रकार उदाहरण के लिए Beer में ५ प्रतिशत Alcohol होती है। इसी प्रकार

६६·

मद्यपान

अनेक शराबों में Alcohol की मात्रा भिन्न २ होती है। इन्हें Alcoholic Beverages कहा जाता है। इन को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है —

I Beers, II Wines, III Spirits.

I Beer — में भिन्न शराबें आती हैं Porter, stout, Larger Beer इत्यादि। इनकी Percentage ५ से ८ होती है।

II Wines — इनमें wine, sherry, claret, champagne इत्यादि होती हैं। साधारणतः wine में Beer की अपेक्षा Alcohol ज्यादा होती है किन्तु घर में बनाई हुई wines (House made wines) जैसे currant, Raspberry, elderberry, cranberry, orange, gooseberry तथा Rhubarb में Alcohol की मात्रा ११ से १२ प्रतिशत होती है।

III Spirits — इनमें whisky, Brandy तथा अन्य spirits होती हैं। इनमें Alcohol की मात्रा ४० से ५५ प्रतिशत होती है।

यह तीन तरह पदार्थ में [illegible] कुछ विभाग

आयुर्वेद

लिखी गई सब शराबों में Alcohol की मात्रा जरूर होती है किन्तु उनमें अनुपात का भेद होता है। Ale के एक Pint में २ चम्मच अलकोहल के होते हैं जब कि Wine के एक Pint में ६ चम्मच अलकोहल होती है। तथा ब्रांडी में आधी अलकोहल तथा आधी पानी होती है। नीचे लिखी गई तालिका से प्रत्येक शराब की अलकोहल की मात्रा स्पष्ट हो जायगी। यह अलकोहल की मात्रा माप के अनुपात दिखाई गई है —

१. Whisky ५१ से ५९ प्रतिशत
२. Rum, Gin तथा strong Liquors. ५१ से ५९ प्रतिशत
३. Sherry, Port, Medeira १६ से २२ प्रतिशत
४. Champagne १० से १३ प्रतिशत
५. Stocks, Burgundy ९ से १३ प्रतिशत
६. Brandy ४३ से ५७ प्रतिशत
७. Port २० से ३० प्रतिशत
८. Claret ८ से १२ प्रतिशत
९. Ale तथा Porter ३ से ५ प्रतिशत
१० Cider ५ से ९ प्रतिशत
११. Koumiss तथा ginger Beer १ से ३ प्रतिशत

आयुर्वेद

सम्वत्	बीमारों की संख्या	[illegible] फी हजार में	मृत्यु फी हजार में
१८६२	२२५४	१७१२	३०२६
१८७२	२३६९	१९७४	४२३७
१८८२	२३५४	२०९४	७७८५
१८९२	२२७५	३७४०	७३६२
१९०२	२३०९	२९२५	९०३५

ऊपर तालिका को देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि इङ्गलैंड ने इस विषय में काफी उन्नति की है किन्तु फिर भी अन्य देश इस विषय में बहुत पीछे हैं। हिन्दुस्तान की अवस्था तो इस देश में बहुत ही गिरी हुई है। जिस देश के छोटे २ बच्चे दूध के न मिलने के कारण उत्पन्न होते ही मृत्यु की गोद में सो जाते हैं; जिस देश के मजदूर दिन भर परिश्रम करके रात को भी भरपेट भोजन न पा सकते हों, जिस देश की जनता धन के अभाव के कारण अपने अंगों को ढकने में असमर्थ हो, जिस देश के बालक शिक्षण के अभाव से दुनिया के लिए प्रलय का विषय बन रहे हों, जिस देश के नौजवान अपने अधिक यौवन के बोझ से दबे जाने से शीघ्र ही मौत के ग्रास बन जाते हों, ऐसी स्थिति

मद्यपान

अशिक्षित, पराधीन देश में कई करोड़ रुपये की शराब पी जाती बड़े आश्चर्य की बात है। यह बात नहीं है कि इस देश के धनी लोग ही अधिकतर शराब पीते हों किन्तु मजदूरों तथा गरीबों में भी यह आदत बहुत फैली हुई है। यदि तुम्हें इस बात पर विश्वास न आता हो ~~कि~~ यदि तुम्हारा दिल इस बात के जानने को उत्सुक हो रहा हो कि धन पैदा ~~करने~~ वालों में इतनी शराब कैसे पी जाती है तो मजदूरों की उन बस्तियों में जाकर देखो जो रात को अपने काम से लौट कर सिर्फ शराब पीकर ही खाली पेट अपने बिस्तर पर सो जाते हैं। उन्हें फिक्र नहीं कि उनकी स्त्री को तीन दिन से अन्न का एक दाना भी नहीं मिला है, उन्हें फिक्र नहीं कि उनके बच्चे ज्वर से पीड़ित होकर पथ्य के अभाव से मौत का ग्रास हो रहे हैं। यदि फिर भी विश्वास न आवे तो जाते रहने को उन मजदूरों के दरवाजों में झांक कर देखो जिनके अन्दर कि मौत भी डरकर आते हुए थर थर कांपती है, जिसके अन्दर घुसने के लिए यमराज को भी पहिले प्रार्थना पत्र ~~देना~~ देना पड़ता है कि जितने गरीब मजदूर तथा अन्य गरीब लोग उसी

आयुर्वेद

इसी ओर अनूठी शराब को पीने की आदत के कारण ही अपनी जीवन की उमंगों को धूल में मिला रहे हैं। ~~लोगों का यह~~

लोगों का यह विश्वास है कि इसके पीने से मनुष्य अपने अन्दर नई शक्ति का अनुभव करता है किन्तु [illegible] French Republic का एक पर्चा जो "Alcoholism and its danger." के विषय में निकाला गया देखने लायक है। उसमें निम्न शब्द ध्यान देने लायक हैं :-

"It is an error to state that Alcohol is necessary for workmen who are engaged in ardnons manual labour, that it gives energy for work, or that it renews strength. The artificial excitement which it produces quickly gives place to nervous depression and weakness; in truth alcohol is a harmfull to all."

इससे यह स्पष्ट होता है कि अलकोहल किसी भी अवस्था में मनुष्य के लिए लाभदायक नहीं है किन्तु नुकसान तो अवश्य ही करती है। इसी प्रकार अफीम, गांजा, भांग आदि जहां इनका Medicine में उपयोग किया जाता है वह कुछ

लाभ ही करती है? enteric fever में अलकोहल का क्या प्रभाव होता है? इसके विषय में एक दो डाक्टरों की सम्मतियां देखने लायक हैं। डाक्टर कोई कुक लिखते हैं:-

" I Rank myself with those who hold that in most cases of enteric fever not only is alcohol not required, but that its employment is occassionally distinctly harmful, even when given in quantities which would not be considered excessive.."

अर्थात्- आंत्रिक ज्वर के (Typhoid fever) लिए शराब की जरूरत नहीं ही होती किन्तु इसका प्रयोग ज्वर में प्रयोग ~~अनेक बार~~ बहुत अधिक हानिकर होता है, इसी प्रकार डा० जेम्स वाल्स M.D लिखते हैं:-

" Pneumonia and typhoid fever are two principle diseases in which alcohol is has been largely prescribed —— but in the latter disease it is more useless than in the former, There is scarcely an indication for its use, while the protracted Na-

ture of the disease allows this medicament more time to work mischief."

अर्थात् इकतरा ज्वर और आंत्रज्वर में दो ही प्रकार की बीमारियां हैं जिनमें कि अल्कोहल व्यवहार कर उत्तम भी जाती है किन्तु आंत्रिक ज्वर (Typhoid fever) के लिए यह बहुत नुकसान दायक है।

इसी प्रकार insanity (पागलपन) तथा अन्य surgical cases में भी इसका उपयोग घातक सिद्ध हुआ है।

अल्कोहल को साधारणतया विषों (Poisons) की श्रेणी में गिना जाता है) इसलिए ही इसे Narcotic poison कहते हैं, Von Ziemssen अल्कोहल के कार्य को निम्न प्रकार दर्शाते हैं।

"The out ward symptoms are like those induced by other narcotics — the nerve centres have their function stimulated at first — then their activity is gradually abolished for the time modified by the quantity of the poison taken, and by the time the

poison is working -- so that we see a variety of phenomena — sometimes only the stage of excitement, sometimes paralytic — the baneful effect of the poison affects all communities."

अर्थात् - यह अन्य विभिन्न अवयवों के ऊपर कार्य करती। पहिले मस्तिष्क को उत्तेजित करके उसके कार्य को बढ़ा देता है और फिर इसके बाद depression की अवस्था आ जाती है। इसी तरह से राबर्ट ह्यूबर्ड M.D. की सम्मति भी देखने लायक है -

"Alcohol is a poison so is strychnine; so is arsenic, so is opium. It ranks with these agents. Health is always in some way or other is injured by it."

अर्थात् शंखिया, कुचला तथा अफीम के समान ही शराब भी एक विष है। इससे स्वास्थ्य किसी न किसी तरीके से अवश्य नष्ट हो जाता है। -

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट सिद्ध है कि शराब

उपसंहार

कुचला तथा अफीम आदि विष शरीर के लिए जितने हानि-
कारक हैं उतनी ही लाभदायक भी हैं। इसलिए इनकी मात्रा के
विषय का ठीक ज्ञान न होना मनुष्य के अपने लिए तथा अपने
समाज के लिए कितना हानिकारक सिद्ध हुआ है यह
आगे चलकर दिखलाऊँगा। किन्तु यह स्पष्ट सत्य है कि
जिस प्रकार संखिया आदि विषों को ~~देखकर~~ खाते समय
खाने वालों के मन में उस प्रकार की हिचकिचाहट उत्पन्न
होती है उसी प्रकार शराब को पीते समय [illegible] [illegible]
हिचकिचाहट नहीं उत्पन्न होती है। उसका मुख्य कारण
यही है कि उसके विषों के लक्षण यह उतनी शीघ्र तथा
उतनी तीव्रता से असर नहीं करती है। जिस प्रकार संखिया
को खाते ही उल्टी तथा दस्त शुरू हो जाते हैं और
देखने वालों के मन में स्वयं प्रकार का भय उत्पन्न
हो जाता है कि इसने तो जहर खा लिया है उसी
प्रकार शराब को पीकर के यद्यपि आदमी को नशा आदि
तो आने लगती है किन्तु ये कोई भयानक लक्षण नहीं
होते हैं जिससे कि देखने वाले डर जायें। किन्तु
इसको जब जब वह शरीर के अन्दर है तो उसे अपना
शरीर टूटा हुआ सा प्रतीत होता है। इस समय उसके

जब मद्य वह पीकर उठता है तो उसे अपना शरीर हल्का फूला सा प्रतीत होता है। इस समय उसके अन्दर अपने कर्म के प्रति ग्लानि उत्पन्न होती है और वह निश्चय करता है कि आगे से कभी शराब नहीं पीऊँगा। किन्तु जिस प्रकार वेद में लिखा है कि जुआरी पांसे की आवाज को सुनकर अपने मन को वश में नहीं रख सकता है उसी प्रकार शराबी भी जिस समय प्याले के अन्दर भरी हुई सुनहरी मदिरा को देखता है तो वह अपने सब संकल्पों को भूल बैठता है। उस समय उसकी ~~[illegible]~~ इन्द्रियां उसकी आज्ञा मानने से इन्कार कर देती हैं और वह शराब के प्याले को उसी प्रकार उठा लेता है जिस प्रकार कि जुआरी अपने प्रतिद्वन्द्वी के सामने अपने धन को दांव पर रख देता है। उसे नहीं याद रहता कि इसको बाद में बरबाद होने वाला है। यही कारण है कि इससे इतने अपराधों को प्रत्यक्ष होते रहने पर भी इसे मनुष्य उसका परित्याग नहीं कर सकते हैं। उन अशिक्षित लोगों के कानों तक यह आवाज पहुंचाने वाली कोई शक्ति नहीं होती कि इससे दुहरी हानि, शक्ति तथा प्रतिष्ठा का नाश होता है।

अब इसके दुष्परिणामों को देखने से पूर्व इसका विश्लेषण

To,

The Head Mashi,
S. D. M. D. High school,
Kapurthala

Sir,

My son Faqir chand is suffering from pain in eyes. Kindly grant him leave for one day dated 19.12.50 & oblige.

Yours obediently
Girdhari Lal
F/o
Faqir chand VIII (A).

D/ 19 12/50.

में सामान्य ज्ञान तथा इसके प्रभाव के ढंग को देखना चाहिए,

आलकोहल Medicine की उस श्रेणी का पदार्थ है जिसे Narcotic (निद्राजनक) कहते हैं। इसी श्रेणी के अन्दर chloroform तथा ether भी होते हैं। इस श्रेणी के पदार्थ शरीर पर दो तरह से प्रभाव डालते हैं -

(i) अस्थायी उत्तेजक (Temporality exhilarant) उत्पादित थोड़ी देर के लिए गर्मी तथा स्फूर्ति सी शरीर के अन्दर अनुभव होती है।

(ii) depressant - यह अवसादक लाती होती है।

दवाई की मात्रा के अनुसार अस्थायी उत्तेजना के थोड़ी या बहुत देर में निद्रा या अचेतनता की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। जो कि उत्तेजना की अवस्था की अपेक्षा बहुत देर तक रहती है। उदाहरण के लिए यदि ether या chloroform की थोड़ी सी मात्रा शरीर में प्रविष्ट की जाए तो गर्मी का तीव्र रूपसे अनुभव और स्फूर्ति की अनुभूति होती है और उसके बाद drowsiness तथा नींद की इच्छा होती है। किन्तु जिन रोगों में यह अधिक मात्रा में दी जाती है उनमें थोड़ी देर तक उत्तेजना की अवस्था रहती है और मानसिक चेतना का नाश होता है और इसके बाद शरीर का ताप-मान कम हो जाता और गहरी निद्रा की अवस्था आ

मद्यपान

जाती है तथा अनुभव करने और - हिलने डुलने की शक्ति का ह्रास हो जाता है। अलकोहल भी इसी प्रकार के कार्य करती है। किन्तु इससे पहिले सन् १८४६ ई० में सबसे प्रथम इसका प्रयोग Dr. Collier ने Anaesthesia के लिए किया था। उसने एक Negro को इसको पिलाकर अचेतन करके उस पर ~~एक~~ एक surgical operation किया था। यही इस विषय का सबसे पहिला case था। ether और chloroform इसके बाद से इस काम के लिए प्रयुक्त किये जाने लगे हैं। अल्कोहल पहिले जिस प्रयोजन के लिए इसकी जरूरत जाती रही है वह इसी चीज़ से लेते हैं और आजकल इसे कम ही कामों में प्रयुक्त किया जाता है। अल्कोहल आजकल इसे सिर्फ Narcotic (निद्राकर) के तौर पर ही प्रयुक्त किया जाता है।

इसके बाद हम इससे होने वाले दुष्परिणामों को देखेंगे।

(असम्पूर्ण)

(चित्रकार - ब्र० चन्द्रकिरण जी 'बड़े')

दांत और उसके रोग

लेखक
एक आयुर्वेद का विद्यार्थी

मनुष्य के शरीर के प्रत्येक अंग की अलग २ बड़ी उपयोगिता है। कोई भी अंग ऐसा नहीं जिस की शरीर में आवश्यकता न हो। यह शरीर रचना की दृष्टि तथा कला की दृष्टि से परमात्मा की सब रचनाओं में उत्कृष्ट तथा पूर्ण है। भौतिक जगत में इस से उत्कृष्ट तथा पूर्ण वस्तु कोई दृष्टिगोचर नहीं होती। एक २ अंग ~~की~~ नियम तथा विधि पूर्वक निर्माण किया गया है और इसके बनाने वाले की उत्कृष्टता ~~से~~ इसी शरीर के निर्माण से की जाती है। संसार में अनेक सुन्दरतम वस्तुएँ हैं जिन की अपने ~~अ~~ स्थान पर उपयोगिता है। परन्तु यह शरीर ईश्वर की सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट सुन्दर तथा ~~गौरव~~ गौरवपूर्ण है। संसार की प्रत्येक ~~रस~~ वस्तु इस शरीर के सामने तुच्छ तथा अपूर्ण है। ईश्वर का सारा हस्तलाघव इस मनुष्य शरीर में समाविष्ट है। के उदाहरण के लिये एक आंख को ले तो इसकी रचना बड़ी अद्भुत है. मनुष्य कैसे देखने लेकर वस्तुओं का ज्ञान कर लेता है यह समझना कठिन है। इसी प्रकार प्रत्येक अंग के बारे में कह सकते हैं। हर अंग अपने स्थान

पर स्थित होकर अपना काम विधि पूर्वक और पूर्णता से सम्पन्न करते हैं
यदि ये अंग जन्म भर स्वस्थ रहते हैं तब तो सांसारिक सुखों को
उपभोग करने का हमें अधिकार है और यदि हमारे अज्ञानवश
या प्रमाद वश ये अस्वस्थ या विकृत हो जाते हैं तो हमारा
ही दोष है और जीवन के सभी सुख आनन्द प्रमोदों से
वंचित हो जाते हैं और सबसे अधिक हम उस कलामय
भगवान का अपमान करते हैं जिसने इन अंगों का निर्माण
किया है और हमें केवल उपभोग के लिये दिये हैं या
धरोहर के तौर पर हमारे सुपुर्द किये हैं। यदि आंख
से हम चाहते हैं कि चिरकाल तक सदुपयोग उठा सकें, यदि
हम चाहते हैं कि आंख हमें पूरा लाभ दे सके तो हमारा
कर्तव्य है कि हम भी इस की वैसी ही सेवा करें जैसी की
हम आंख से लेना चाहते हैं। यदि प्रमाद वश हमने इसकी
सेवा न निभाई तो जन्म भर हमें अनेक दुःखों का सामना करना
पड़ेगा। संसार हमारे लिये अन्धकार पूर्ण हो जायगा। ईश्वर ने
जिन वस्तुओं को देखने के लिये हमें ये आंखें दी थीं उनसे
हम वंचित रह जायेंगे और संसार की बढ़ती हुई प्रगति या
उन्नति से हम दूर जायेंगे। दुनियां हमारे लिये कोई आनन्द सुख
का साधन नहीं हो सकेगी। आंख की सेवा से मेरा अभिप्राय
उसकी सफाई से है। और बाहर से आने वाले आघातों से बचाने से

आयुर्वेद

है। इसी प्रकार प्रत्येक अंग के बारे में कह सकते हैं। यदि हम चाहते हैं कि यह हमारा शरीर पूर्ण आयु तक स्वस्थ रहे तो प्रत्येक अंग की मदद करनी चाहिये जो कि उसके लिये उपयोगी हैं और जिससे वह चिरकाल तक हमारा साथ दे सके। प्रस्तुत निबन्ध का असली विषय दांत है। इसके बारे में ही दो चार शब्द लिख कर इसकी उपयोगिता समझाने का यत्न किया जायगा। और कुछ दांत सम्बन्धी रोगों का भी वर्णन किया जायगा जिससे पाठक गण कुछ लाभ उठा सकें।

दांतों का भी शरीर में उतना ही महत्व पूर्ण स्थान है जितना और किसी अंग का हो सकता है। यह सब कोई जानता है कि इस शरीर का पोषण अन्न रस से होता है यह अन्न रस प्रत्येक शरीर के प्रत्येक अंग में तथा प्रत्येक हिस्से में पहुंच कर उसका पोषण करता है तथा जीवन शक्ति देता है। यह रस आमाशय आदि अंगों के अन्तः रसों से बनते हैं और गुणयुक्त होते हैं। आमाशयिक रस भी भोजन का रस बनाने में तभी समर्थ होते हैं जब कि आमाशय में गया हुआ भोजन रस बनने के लायक हो और आमाशयरस उस भोजन पदार्थ पर असर कर सकें। यदि वह पदार्थ कठोर तथा भारी हैं तब आमाशयरस उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं कर सकता। इसी काम के लिये अर्थात् भोजन पदार्थों को उस अवस्था में लाने के लिये कि जिससे आमाशय

आयुर्वेद

रस क्रिया कर सकें, दांतों का उपयोग है। यदि इन का उचित प्रयोग न किया जाय तो भोजन पदार्थों से जो रस बनना था और जिससे हमारे शरीर का पोषण होता था वह नहीं बन सकेगा और वह पदार्थ एक प्रकार का शल्य का काम करेंगे जिससे आमाशय तथा आंतों में वेदना आदि लक्षण प्रकट होंगे। और रस के निर्माण न होने से अंगों का पोषण ठीक न हो सकेगा जिससे शरीर क्षीण होता जायगा। अतः दांतों का ठीक उपयोग करते हुए इनकी उपयोगिता सिद्ध करते रहेंगे।

सफाई मनुष्य का एक अंग है। मैल को यदि दूसरा नाम पाप दें तो अत्युक्ति न होगी। पाप मनुष्य का स्वाभाविक शत्रु समझा जाता है। जीवन का उपयोग तभी सिद्ध हुआ समझना चाहिये कि यदि मनुष्य ने कम से कम पाप किये हों। प्रत्येक मनुष्य सदा पाप से बचने की अनेक चेष्टा किया करता है। यदि हम यह समझते हैं कि मैल भी पाप है तब इससे बचने की भी हमें अनेक चेष्टा करनी चाहिये। स दांतों की सफाई की कितनी आवश्यकता है यह सब को मालूम है। अधिकतर जो दांत की बीमारियां हुआ करती हैं वे दांतों को साफ न रखने से हुआ करती हैं। दांतों की प्रायः बीमारियां पाचन प्रक्रिया में बड़ा असर करती हैं। ~~पाचन~~ मुंह में उत्पन्न थूक भोजन के पचाने में बड़ा भारी हिस्सा है। आमाशय में पाचन क्रिया मुख से ही

होती हैं। यदि दांत की हम अच्छी तरह सफाई नहीं करेंगे तो अनेक विषैं भोजन के साथ मिल कर आमाशय में पहुंच जायेगी और वे विष आमाशय की क्रिया में बुरा प्रभाव डालेगी। विषों का प्रायः प्रभाव उत्तेजनात्मक होता है। इससे आमाशय की क्रिया उत्तेजित होगी और आमाशय की अम्लीयता बढ़ जायगी जिससे आमाशय प्रदेश पर जलन, खट्टे तथा तीखे २ डकार आदि लक्षण होंगे। विषों का प्रभाव आमाशयिक रसों पर भी होता है। आमाशयरस भी विषों से दूषित होकर भोजन का पाक भली-प्रकार नहीं कर सकेंगे। इससे भोजन पदार्थ का ठीक पाक न होकर self ferment होना शुरू होता है। परिणाम स्वरूप अनेक विष रक्त में मिल कर शरीर में संचार करने लगती हैं। इसके विष जहां जाकर स्थित होती हैं वहां दर्द का आरम्भ करती हैं। उन विषों का अंगों पर और भी कई बुरे असर पड़ सकते हैं। अंगों का पोषण न्यून होजाता और शरीर क्षीण होना आरम्भ होजाता। इससे हमें पता लग सकता है कि दांतों के मैला रहने से क्या २ बुरे असर हो सकते हैं। यहां हम यह बताने की कोशिश न करेंगे कि उन की सफाई कैसे रखनी चाहिये। यह विषय सब को मालूम है। परन्तु यहां इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि जिनके दांत प्रमादवश रोग ग्रस्त हो चुके हैं उन्हें बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। यदि वे आरम्भ से ही इधर ध्यान देंगे तो आगे चलते

दाँत और उनके रोग

दुष्प्रभावों से अवश्य बच जायेंगे। इसलिये ऐसे आदमियों के लिये आवश्यक है कि वे भोजन से पहले तथा बाद दाँतों को तथा मसूड़ों को अंगुलि से खूब साफ किया करें। भोजन से पहले साफ करने का तात्पर्य यह है कि यदि उनके मसूड़ों में जो थोड़ी बहुत पीप लग रही है वह बाहर निकल जाय जिससे वह भोजन के साथ आमाशय में न जा सके। यदि भोजन के साथ घुल के चली जाय तो वह अपना विषमय असर करेगी जिससे उपरोक्त लक्षण उग्र प्रकट हो जायेंगे। ऐसे मनुष्यों को सोने से पहले भी एक बार अवश्य दातुन कर लेनी चाहिये। क्योंकि इससे रात में बढ़ने वाले कृमियों की न्यूनता होती है। क्योंकि यह सब को मालूम है कि दाँतों में कृमि रात में बड़ी तीव्रता से बढ़ते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रात कृमियों के लिये उपयुक्त समय है। वैसे तो कृमि हर समय एक बराबर बढ़ते हैं परन्तु यह नहीं भूलना चाहिये कि ऋतुओं का असर इन की वृद्धि पर अवश्य होता है। रात में बढ़ने का कारण यह है कि उस समय मनुष्य निश्चेष्ट सोया हुआ होता और रात को मुँह बिल्कुल बन्द तथा विश्राम की अवस्था में होता है। इससे कृमियों को बढ़ने में बाधा नहीं होती और खूब बढ़ते हैं। इसलिये यदि रात को सोते समय दाँतों को साफ कर लिया जाय तो काफी संख्या में कृमि बाहर निकल जायेंगे और वृद्धि में भी कमी होगी।

परन्तु जिन को रोग बढ़ गया है उन्हें दातुन की अपेक्षा कुछ कृमिघ्न मंजनों का प्रयोग करना चाहिये। और सदा मुँह को साफ रखते रहना चाहिये। इसके अलावा कुछ दांतों के रोग रखे जाते हैं और उनसे बचने के उपाय भी मोटे तौर पर दिये जाते हैं। यदि किसी को इनसे फायदा हुआ तो इस लेख का तथा इस प्रयत्न का फल अच्छा होगा।

~~Dental sepsis~~ Gingivitis (मसूड़ों की शोथ)

इस रोग में सारे मसूड़े फूल जाते हैं। और उनमें पस और ulcer बन जाते हैं। यहां से जीवाणु रक्त में जाते रहते हैं जिससे रक्त दूषित होकर अनेक जगह विकृति पैदा कर देता है। क्यों कि प्रत्येक अंग का पोषण शुद्ध रक्त से होता है। यदि रक्त विकृत दशा में तन्तुओं में संचार करेगा तो उन तन्तुओं पर घातक प्रभाव होगा। इसका सब से अधिक प्रभाव आमाशय और पाचक अंगों पर प्रकट होता है। भोजन रक्त की सहायता से ~~भ~~ पचता है। आमाशय आदि पाचक अंगों ~~रक्त~~ की सूक्ष्म ग्रन्थियां रक्त से ही ~~अ~~ विशेष प्रकार के रस निर्माण करते हैं जो कि भोजन पदार्थों को पाक करते हैं परन्तु इस रोग में विकृत हुआ रक्त पाचक अंगों में पहुंच कर प्रभावशाली रस पैदा नहीं कर सकता — परिणाम स्वरूप अजीर्ण आदि नाना रोग प्रकट हो जाते हैं।

यह रोग दांतों को ठीक तरह से साफ न करने से पैदा होता है। जो मनुष्य नित्य कई वर्षों तक दातुन द्वारा या अन्य विधि

से दांत साफ नहीं करते तो उनके दांतों पर मैल जमती रहती है। इसी कारण मसूड़ों में सूजन पैदा होजाती है। इसके बाद Pyogenic Bacteria का संक्रमण होजाता है। या भोजन के बाद दांतों के अन्तरों में कुछ टुकड़े बच रहते हैं उनको ~~म~~ नि प्रतिदिन न निकालने से यह रोग होसकता है। अन्तरों में अटका हुआ भोजन का टुकड़ा वहां सड़ता रहता है और मसूड़े की शोथ पैदा कर देता है। यह रोग पारे की विषता भी होसकता है।

लक्षण— मसूड़े का स्वाभाविक रंग गुलाबी होता है और उस में एक विशेष प्रकार की चमक होती है जिसके कारण इसमें एक चमक होती है। परन्तु शोथ में इसका अपना स्वाभाविक रंग हट जाता है और उसके स्थान पर लाल रंग आजाता है और मसूड़ा सूजा हुआ प्रतीत होता है। थोड़ा दबाने से खून बहने लगता है। मसूड़े और दांत की सन्धि पर ulcer बनने लगते हैं। मसूड़े में अपनी दृढ़ता शक्ति कम होजाती है और वह ढीलासा होजाता है जिसके कारण दांत ढीले तथा कमजोर होजाते हैं और अपने आप हिलने लगते हैं और गिरने लगते हैं। दांतों के आस पास मसूड़ों में Pockets में Pus भर जाती है इस हालत को Pyorrhoea कहते हैं।

Pyorrhoea

इसमें मसूड़े के किनारों की शोथ होजाती है और वहां suppuration होजाता है। जिससे मसूड़े और दांत में से पूय निकलती है। कई दांतों की जड़े अन्दर रह गई होतो मसूड़ा इतना फूलजाता कि वह

जल्दी ही फैल जाती है। मसूड़ों पर ज़रा दबाव डालने से खून निकलने लगता है। मसूड़े की स्वाभाविक शोभा नष्ट हो जाती है उनके स्थान पर अस्वाभाविक रंग चढ़ जाता है जिसके कारण उनकी स्वाभाविक शोभा जाती जाती है। यदि रोगी का मुँह खोलकर देखें तो मसूड़े पर स्थान २ पर श्वेत से बिन्दु नज़र आते हैं और रोगी के श्वास में से दुर्गन्ध आती है। रोगी की जिह्वा बहुत मलिन होती है। कई रोगियों में मसूड़े इतने सिकुड़ जाते हैं कि दांतों की Roots नङ्गी हो जाती हैं और दांत गिरने लगते हैं और रोग असाध्य होने लगता है। यह रोग एक दांत या सारे दांतों में हो सकता है। प्रारम्भ में दांतों पर मैल जमना आरम्भ होता है। यदि उसे प्रतिदिन साफ न किया जाय तो दन्तरोग आदि रोग हो सकते हैं। जिनका ऊपर हम वर्णन कर आये हैं।

चिकित्सा —

यदि आरम्भ से ही दांतों पर ध्यान दिया जाय तो यह रोग नहीं हो सकता। जो व्यक्ति नियमपूर्वक मुँह दांत आदि की सफाई करते हैं प्रातः दातुन यथाविधि करते हैं तथा दोनों समय भोजन के बाद नियमपूर्वक दांतों को तथा मसूड़ों को अंगुलियों से साफ करते हैं उनको यह रोग नहीं होता। यदि प्रमाद वश दांतों पर मैल जम कर दांत खराब हो गये हैं और मसूड़ों की शोथ आरम्भ होने लग गई है तब डाक्टर से साफ करा लिये जावें तो इस रोग से बचाव हो सकता है और दांत स्वच्छ हो जाते हैं

दांत और उनके रोग

इसके साथ २ गाढ़ी तथा Antiseptic औषधियों से गरारे करने चाहियें जिससे कृमि सर्वथा न रहें। इसके अतिरिक्त बाजार में मिलने वाले अनेक मंजन तथा Paste लाभकारी सिद्ध हुए हैं उनका यथावत् प्रयोग करने से काफी लाभ की सम्भावना है।

इस लेख का जो विषय है वह बड़ा महत्व पूर्ण तथा उपयोगी है। इस की उपयोगिता सब को मालूम है। यह विषय केवल मात्र निबन्ध का न रह जाय परन्तु उसपर क्रियात्मक काम किया जाय तो अधिक उपयोगी होगा। इस विषय पर निबन्ध लिखकर अनेकों ने इसकी उपयोगिता समय २ पर बतलाने की कोशिश की है। यदि हम अपने जीवनों को सुखी करना चाहते हैं तो हमें अपने शरीर के प्रत्येक अंग की उसी प्रकार की रक्षा करनी चाहिये जैसे कोई कंजूस आदमी अपने धन की रक्षा में लगा रहता है। यदि हम प्रमाद वश या और किसी कारण से इस धरोहर की रक्षा नहीं करते तो इस धरोहर की शक्तियां हमारे शत्रु हर लेते हैं और हमारी बुरी दशा होती है उसे सब कोई समझ सकते हैं शरीर रोगों का घर बन जाता है। जिससे शरीर पर हमारा प्रभुत्व नहीं रहता और जीवन भार रूप सा ही रहता पड़ता है। इसके सिवाय और कोई रास्ता भी नजर नहीं आता।

DEVELOPMENT OF THE MALARIAL PARASITE

(श्री महेन्द्रनाथजी

मलेरिया पराश्रयी का जीवन चक्र
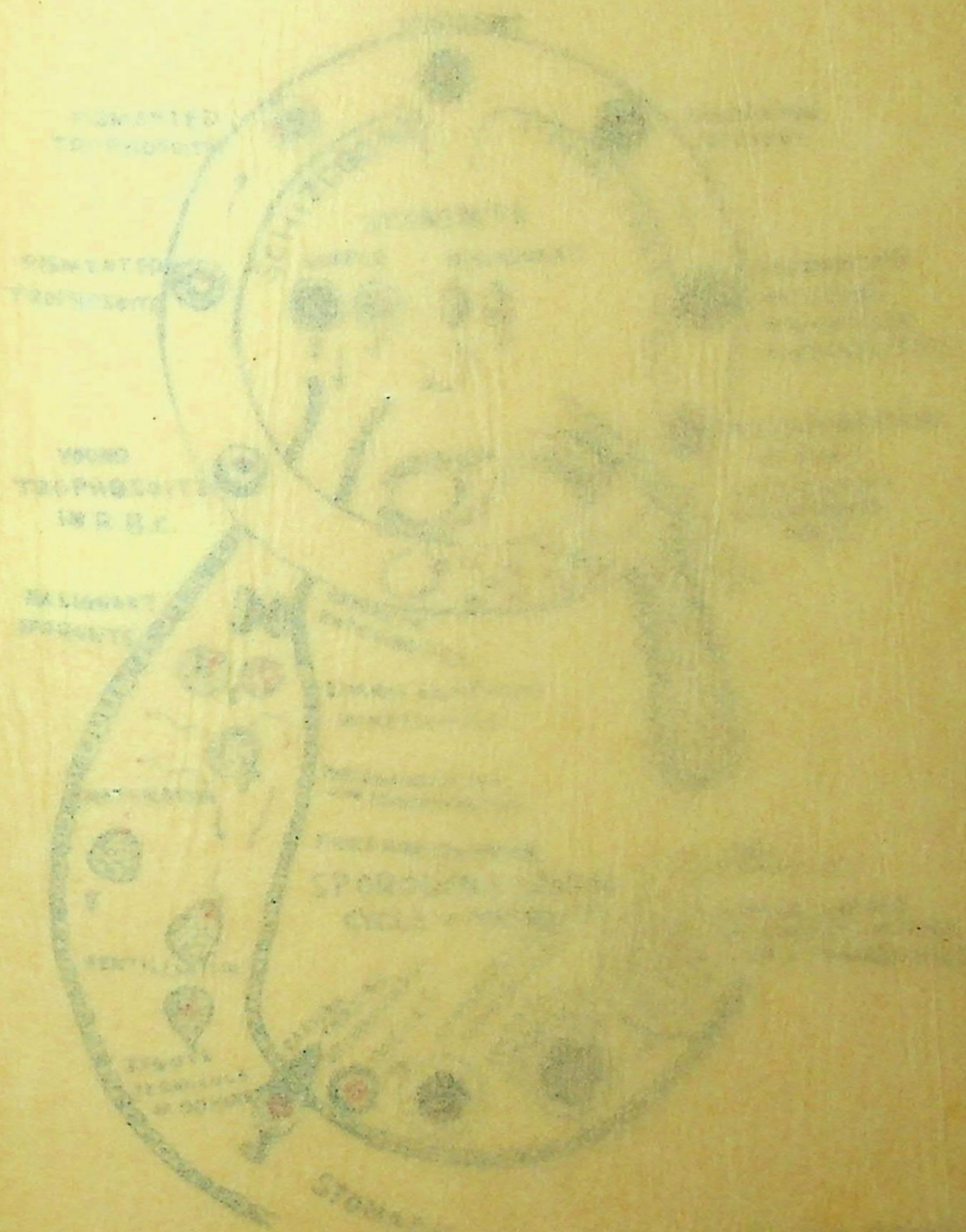
प्राचीन काल में शल्यतंत्र का अभ्यास

(प्रो० [illegible] जी)

जब से मैंने आयुर्वेद पढ़ना आरम्भ किया तब से मेरे मन में यह प्रश्न उठता है कि अर्वाचीन शल्यतन्त्र तथा प्राचीन शल्यतन्त्र में कौन उन्नति शिखर पर है? मेरे से जब कोई प्रश्न करता है कि अपनी सम्मति बताओ, मैं तो यही कहता हूं कि प्राचीन आयुर्वेद चिकित्सा की दृष्टि से तथा अर्वाचीन (एलोपैथी) आयुर्वेद चीराफाड़ी की दृष्टि से उन्नति पर है। यह उत्तर देने पर भी मन में शंका रहती थी कि रामायण महाभारत काल में बड़े २ महायुद्ध हुए क्या उस समय शल्यतन्त्र की उन्नति नहीं थी? सुश्रुत पढ़ने से पूर्व मेरी यही सम्मति थी कि प्राचीन शल्यतन्त्र अवनत था। जब से सुश्रुत का अध्ययन प्रारम्भ किया है तब से मेरे विचार बिल्कुल पलटा खा गये हैं जिन बातों को मैं ठीक समझता था उन को बुरा समझने लग गया हूं। अब तो मेरा यह विचार पक्का हो गया है कि प्राचीन शल्यतन्त्र ज्ञान की दृष्टि से सब से अधिक उन्नत है। पर हमारे मध्यकालीन वैद्यों के आलस्य से तथा विदेशी राज्य होने से अब केवल किताबों में ही रह गया है।

प्राचीनकाल में शल्यतंत्र का उत्कर्ष

अतः यह सब लिखने की आवश्यकता मुझ को इस लिये हुई कि हम अपने शल्यतन्त्र की उन्नति करने में एक पग भी आगे नहीं रख रहे। यदि हमारा वैद्य समुदाय इस की तरफ ध्यान दे तो थोड़े काल में ही प्राचीन शल्यतन्त्र की महत्ता ~~सब के~~ संसार के सामने स्पष्ट रूप से आ सकती है। अर्वाचीन शल्यतन्त्र अभी तक बहुत ही पीछे है उस को अभी तक केवल शल्यतन्त्र की दवाईयों में Antiseptic का ही ध्यान है चाहे जखम महीनों चले। उस पर केवल एक्रीफ्लेवीन, आयडोफोर्म ग्लिसरीन या आयोडीनासव या टिंक्चर का ही प्रयोग महीनों तक चलता है। इन औषधियों से थोड़ा बहुत ही लाभ होता है पर हमारे प्राचीन शल्यतन्त्र में जखम के लिये जीवाणुहर, रोपण करने वाली तथा भरने वाली दवाईयों के बहुत अच्छे २ लेप मिलते हैं जो घाव को थोड़े काल में ही भर देते हैं उदाहरणार्थ - एक आदमी को Psoas abscess का अस्पतालों की महीनों तक चिकित्सा हुई पर घाव पूर्णतया ठीक न हुआ था अन्तकाल में योग्यता परीक्षण करने से घाव का मुख छेदित खुलवाया २-३ लेट के घाव पर एक प्राचीन शल्यतन्त्र के चिकित्सक का इलाज प्रारम्भ हुआ घाव २ महीने में पूरा भर गया रोगी सब प्रकार से अच्छा होगया। इस प्रकार बहुत उदाहरण मिल सकते हैं जिन से प्राचीन शल्यतन्त्र के गुणों का ज्ञान हो सकता है। इस लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राचीन शल्यतन्त्र

की उन्नति में यत्न करें। वैद्यों के लिए लिखा इस पर विचार करें। यह सब उपरोक्त बातें प्राचीन आयुर्वेद के शल्यतन्त्र के सम्बन्ध में मैंने बताई हैं। अब मैं अपने विषय को प्रारम्भ करता हूं। प्रस्ताव का विषय है प्राचीन काल में शल्यतन्त्र को वैद्यलोग किस तरीके से पढ़ते थे सुश्रुत के शब्दों में "योग्यासूत्रीयम्" कह सकते हैं। इस लेख के लिखने का यह अभिप्राय है कि पूर्वकाल में वैद्यलोग किस प्रकार तरीके से शल्यतन्त्र को पढ़ते थे। आज कल शल्यतन्त्र के पढ़ने में अत्यधिक खर्च होता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी को किसी काम के प्रारम्भ करने पर उसके अभ्यास की आवश्यकता होती है पशुओं में देखें घोड़े को गाड़ी में जोतने से पूर्व उस के पीछे भार बान्धकर अभ्यास कराते हैं। एवं पक्षियों में भी माताएं बच्चे को धीरे उड़ना, खाना पीना आदि कार्य सिखाती हैं। मनुष्य जाती में भी छोटी जातियां कुम्हार जुलाहा आदि भी अपने बच्चे को अभ्यास कराते हैं फिर काम पर लगाते हैं मतलब है ऐसा कोई प्राणी पैदा नहीं हुआ जो कि बिना अभ्यास के कोई कार्य कर सके।

इस लिये यह आवश्यक है कि जब कोई काम किया जाय बिना अभ्यास न करना चाहिये। आयुर्वेद पढ़ने वाले विद्यार्थी को शल्यतन्त्र के अभ्यास की बहुत ही अधिक आवश्यकता है बिना अभ्यास के वैद्य नहीं बन सकता।

प्राचीनकाल में शल्यतंत्र का अभ्यास

बिना अभ्यास के अगर कोई वैद्य बन भी जाय तो वह उस उक्ति का पोषक होगा "नीम हकीम खतरे जान" अर्थात दुनियां में अभ्यास करने पर २-४ आदमियों को मारेगा और २-४ को अच्छा करेगा। चरक के शब्दों में वह वैद्य नाम के योग्य नहीं है।

शल्यतन्त्र का अभ्यास पुस्तकों से पढ़कर नहीं हो सकता जब तक किसी अनुभवी चिकित्सक से सहायता न ली जाय। उदाहरणार्थ यदि किसी विद्यार्थी ने आयुर्वेद के सब ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया है और एक दूसरे विद्यार्थी ने जो कि केवल वैद्य के साथ रह कर केवल अभ्यास करता है, योग्यता में तुलना की जाय तो पुस्तक घोटने वाले में अधिक है पर वह कोरे ज्ञान के लिये है और दूसरे विद्यार्थी में पुस्तकों का ज्ञान तो कम है पर जो कुछ उस ने सीखा है वह सब अनुभव कर लिया है इस लिये उस का ज्ञान देर तक रहेगा क्यों कि अभ्यास कर के उस ने स्मरण किया है। तीसरा विद्यार्थी जिस ने पुस्तकों के ज्ञान के साथ अभ्यास भी किया है उस का अभ्यास दुनियां में चमक सकता है वास्तव में वही वैद्य नाम के योग्य है। आयुर्वेद विषय जितना प्राचीन इस वक्त भारतवासियों ने बना रखा है उतना प्राचीन नहीं

आयुर्वेद

आज कल तो जो कोई आयुर्वेद की एक किताब पढ़ लेता है वही अपने नाम के आगे कविराज वैद्य तथा वैद्यभूषण, आचार्य आदि पदवियों को लगाने लग जाता है। इसी लिये गवर्नमेन्ट ने हमारे वैद्यों का मान नहीं किया।

हमारे शल्यतन्त्र का महत्व क्यों घट गया? क्यों दुनियां अर्वाचीन शल्यतन्त्र को क्यों अपनाने लगी? इन प्रश्नों का उत्तर यही है कि आलस्य के कारण वैद्यों ने अभ्यास को छोड़ दिया अभ्यास के न होने से दुनिया को विश्वास न रहा।

अर्वाचीन शल्यतन्त्र के नेता अभ्यास पर कितना अधिक विश्वास रखते हैं इस को मैं एक दो उदाहरणों से स्पष्ट करूंगा। वैद्य लोगों को हृदय के शब्दों का ठीक २ ज्ञान नहीं क्यों कि निरीक्षण का अभ्यास नहीं पर योरुप में पुस्तकों का घोटा लगाने का रिवाज़ नहीं, जिस प्रकार हमारे वैद्य लोग श्लोकों को रट लेते हैं चाहे उन का अभिप्राय ज्ञात हो या न हो। आधुनिक डाक्टरी पढ़ाने में हृदय के रोगों के पढ़ाने के लिये उपाध्याय लेकचर देगा तथा साथ २ बड़े २ श्रवणयन्त्रों द्वारा हृदय के शब्द की खराबी को तथा अच्छाई को एक साथ सब विद्यार्थियों को सुनवायेगा फिर मैजिकलैम्प द्वारा चित्रों से रोग आदि के लिये पैसा पर चाहिये उस में कितना तफावत चाहिये या में

क्या २ वस्तुओं को रखना चाहिये चारों तरफ का वायुमण्डल कैसा होना चाहिये। रोगी को अन्न में क्या दवाई देनी चाहिये और किस दवा से शीघ्र लाभ होगा किस से देर में, दवा का मनुष्य पर क्या असर पड़ेगा यह सब बातें बड़े विस्तार से समझा देते हैं इन सब बातों को जब एक विद्यार्थी अच्छी प्रकार देख लेगा तब उस को दुनिया में अभ्यास करते हुए रोग के लक्षणों को देखकर Diagnose करने में प्रवीण रहता है।

जिस प्रकार अर्वाचीन डाक्टर लोग अभ्यास पर अधिक विश्वास रखते हैं इसी बात को सुश्रुत ने बड़ा स्पष्ट शब्दों में लिखा है —: अधिगत शास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्यं कारयेत छेद्यादिषु स्नेहादिषु च कर्मपथमुपदिशेत् ॥

इस का अर्थ यह है कि विद्यार्थी को आयुर्वेद की सब पुस्तकों के पढ लेने पर भी वैद्य छेदनादि तथा स्नेहादि कर्मों का अभ्यास करावे।

छेदनादि तथा स्नेहादि कर्म आयुर्वेद के दो भागों को बताने वाले शब्द हैं छेदन में शल्य तन्त्र के अष्ट कर्म छेदन, [1] लेखन [2] भेदन [3], विस्रावण [4], कर्षण [5], आहरण [6], अनुलोमन [7], सीवन [8] का निर्देश है इन आठ कामों के लिये शास्त्रावचारणीय अध्याय में २० शस्त्रों का वर्णन किया गया है।

दूसरा शब्द स्नेहादि कर्मों के लिये है यह चिकित्सा का पूर्वकर्म है स्नेहादिकों से अभिप्राय पञ्चकर्म आदियों से है। इस लिये सुश्रुत ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है कि पुस्तकों के पढ़ने के बाद ही वैद्य नहीं बन जाता पर अभ्यास करने की भी आवश्यकता है। सुश्रुत - प्रबहुश्रुतोप्यकृत योग्यः कर्मस्वयोग्यो भवति॥ अर्थात् वैद्य ने सब शास्त्रों के पढ़ लेने पर यदि अभ्यास न किया हो तो वह शिष्य वैद्य कहलाने के योग्य नहीं होता। उस शिष्य की उपमा गधे पर चन्दन की गठरी लादने से हो सकती है। निःसन्देह गधा चन्दन के गुणों को नहीं जानता नहीं उस की गन्ध का अनुभव लेता है वह तो केवल ढोना जानता है, एवं शिष्य के सम्पूर्ण ग्रन्थों के पढ़ लेने पर सत्य में अभ्यास न किया हो तो शास्त्र का पढ़ा हुआ भार रूप में होता है।

सुश्रुत के अनुसार शल्यतन्त्र का अभ्यास

आज कल शल्यतन्त्र के सिखाने के लिये Dead Body पर अभ्यास किया जाता है पर ऋषि मुनि लोग इस अभ्यास को रखने की वस्तुएं यथा बेल, घीया, तरबूज खीरा, ककड़ी, पेठा आदि पर पहले वैद्य अपने आप करता था पश्चात् शिष्य अभ्यास करता था।

इस प्रकार अभ्यास करने से धन भी बहुत अधिक नहीं होता और खेल खेल में अभ्यास कर लेता है। इस प्रकार प्राचीन वैद्य धीरे २ शिष्य को अभ्यास कराते थे। ककड़ी, तरबूज आदि पर चीरा आदि लगाने के बाद खाल की मशक तथा मृत पशु के मूत्राशय तथा रबर की थैलियों में जल या कीचड़ भर कर भेदन क्रिया का अभ्यास कराते थे। इस के बाद मरे पशु की शिरा में नश्तर लगाना, अन्य कमल नालियों में operation करना सिखाते थे। व्रण में मवाद को ढूंढना सिखाने के लिये व्रण से पोली नली के छिद्रों में अभ्यास कराते थे और चमड़े के दो हिस्सों पर सीने का अभ्यास सिखाते थे।

अस्थि, सन्धि, नाड़ी, शिराओं, आशय आदि का उपदेश कागज पर मिट्टी के बनाये नमूनों से कराते थे।

इस प्रकार अभ्यास करने से खर्च ज्यादा नहीं लगता और विद्यार्थी हंसी खेल में ही बहुत कुछ सीख जाता है दुनिया में अभ्यास करने पर वैद्य [illegible]. नाम को भी उज्ज्वल करता है। यह तो निश्चित है कि जब से बड़ा वैद्य होता है वही प्राणों का देने वाला है। यह कुछ शब्द मैंने सुश्रुत के योग्यसूत्रीय अध्याय ९ लिखे हैं।

१८१.
कहानी.

(ब्र० नित्यानन्द राव जी)

गरीब दुखिया मां ने अपने नन्हे से दुधमुंहे बच्चे को छाती से लगा के करुण स्वर में कहा- मेरे लाल, मेरे सर्वस्व, मेरे राजा मैं तुझे कभी अपनी आंखों से ओझल न होने दूंगी। तेरा बाप कहा करता है कि 'बेटा बड़ा होगा तो खेत में मजूरी करवा देंगे- मेरा भी क्या जीवन नहीं बीता, इसका भी नहीं बीतेगा। चलो, मेरा पेट तो किसी ठिकाने लगेगा। हमें कहीं पेट के लिए ठोकरें तो नहीं खानी पड़ेंगी। चैन की नींद सोएंगे बच्चा कमाएगा।"

देखना तो बेटा तेरा बाप क्या कहता है। तुझे तो ऐसे समझ बैठा है मानो शरीर की मैल हो कि आफ़त हो जितनी जल्दी दूर हो। देखूँ तो मेरे बच्चे, मेरे मुन्नू को कौन मेरे से छीनता है, नहीं उसे दाल का भाव मालूम पड़ जायगा। जो छुएगा उसका हाथ काट डालूंगी, समझ रखना है कि मैं तो

माँ का हृदय

पानी भरने वाली लौंडी हूँ कुछ बोल भी नहीं सकती -- हूँ देखूँ तो किसकी हिम्मत होती --- ऐसा कहते २ पुजारिन के क्रोध से होंठ फड़कने लगते और चमकने लगते आँखों से उष्ण अश्रु बिन्दु! वह अपने लाल को और भी अपनी छाती से चिपटा उसके कोमल ओष्ठ प्रदेशों पर अपने प्रेम की बौछार कर देती।

× × ×

पश्चात्:-

" माँ भिक्षा! "

" हे बेटा कैसी भिक्षा! क्या तुम्हें धन चाहिए? अन्न चाहिए? तुम तो शकल से भूखे नहीं मालूम पड़ते। "

नहीं माँ मुझे धन न चाहिए, अन्न न चाहिए, जमीन न चाहिए, संसार का ऐश्वर्य न चाहिए। मेरे सामने दुनिया का वैभव, बादशाह की बादशाहत, कुबेर का कोष, प्रेमी का प्रेम ~~कुछ मूल्य नहीं रखती~~ और योगी का आत्म-चिन्तन कुछ मूल्य नहीं रखती, मुझे चाहिए आपके

की भिक्षा?

आत्मवेदी

" हैं क्या कहा ? मेरे जिगर के टुकड़े को तू गुलाम होने देगा, मुझे अनाथ बनाएगा ? क्या फिर मैं इस तुझे दुःख देने को ही पैदा हुए हैं ? हट, आग लगे, दूर हट, ऐसा कहने से पहिले ही तेरी जीभ क्यों न कट कर गिर पड़ी। जब स्वयं मातृ हृदय की आह बड़ी जल्द लेकर होती है ? मैं अपने बेटे को कभी न दूँगी।"

" माँ, जरा धैर्य करो, शान्त होओ, तुम्हारे ही हाथ में आज सारे हमारे देश की बागडोर है, तुम ही हमारे देश की अधिष्ठात्री देवी हो। क्या तुम अपने बेटे को अपने प्यार की रक्षा में निष्क्रिय करना नहीं चाहती? यह मेरे स्वार्थ की विजय नहीं देश की विजय है। माँ, अब भी क्या तुम मेरी प्रार्थना न सुनोगी।"

"माँ ने इसी प्रकार के हृदय को जरा दृढ़ कर कहा— " जरूर" "तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार"

इतना कह उसने अपने बेटे की तरफ मुड़ कर बड़ी भर्राई हुई आवाज में कहा —

७६

माँ का दर्पण

"बेटा, एक दिन कहा था जब मैंने तुम्हें छाती से लगा प्यार किया था कि कभी तुम्हें अपने से दूर न करूँगी। पर आज अपने देश के लिए तुम्हें मौत के मुँह में हर्ष अपने हाथों धकेलती हूँ। जाओ, माता पर खेल।"

यह कह उसने बेटे को आखिरी बार छाती से लगा और बार २ मुख का चुम्बन किया।

निकट का जन आश्चर्य से होंठ पर अंगुल अवाक् खड़ा था, उसके मुँह से निकल गया "यही माँ का वास्तविक दर्पण है।"

आयुर्वेद

(ब्र० सुरेशचन्द्र जी)

नीचे लिखा पत्र स्वयं ही अपने आपको स्पष्ट कर रहा है, इसलिए इसे अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है।

महाशय जी!

मैं एक उन बीमार लोगों में से हूं, जिनको कि वेलिटुडिनेरियन नाम से कहा जाता है। और मैं यह मानता हूं कि सबसे पूर्व मुझे यह शरीर की, बल्कि मन की आदत शरीर-शास्त्र के अध्ययन से ही पड़ी है। और ज्योंही मैंने इस प्रकार की पुस्तकें पढ़नी शुरू कीं तो मैंने यह देखा कि मेरी नाड़ी की गति अनियमित हो गई है और किसी भी रोग का मैंने वर्णन नहीं पढ़ा है जिसको मैंने यह न विचारा हो कि इससे मैं पीड़ित नहीं हूं। डा० 'सिडनहम' की उस सुन्दर पुस्तक 'ट्रीटाइज ऑन फीवर्स' (Treatise on fevers) को जबतक मैं पढ़ता रहा तब मैंने यह समझा कि मुझे क्षय का लम्बा चलने वाला ज्वर हो गया है। तब मैंने बहुत से लेखकों की क्षय रोग पर लिखी पुस्तकें पढ़ीं और उनके पढ़ने से मुझे ऐसा आभास होने लगा कि मुझे क्षय हो गया है। आखिर क्योंकि मैं प्रतिदिन मोटा ताजा होता जाता था मुझे अपनी इस कल्पना पर लज्जा अनुभव होती थी। इसके थोड़े ही समय पश्चात् मुझे अपने शरीर में सिवाय दर्द के गठिया के सम्पूर्ण लक्षण दिखाई दिये। पर एक बुद्धिमान् द्वारा लिखित 'ट्रीटाइज ऑन दि ग्रेवल' के पढ़ने से मेरा रोग अच्छा हो गया और इसके स्थान पर पथरी हो गई।

काल्पनिक रोगी,

(क्योंकि डॉक्टरों के जिये एक रोग को दूसरे रोग में परिवर्तित करना साधारण बात है) आखिर मैंने असाध्य रोगों के विषय में अध्ययन किया किन्तु अचानक 'सेंक्टोरियस' लिखित एक उत्तम लेख मेरे हाथ पड़ गया। मैंने उसके विचारों को पढ़कर अपने आप को नियमित रूप में चलाने का निश्चय किया। शिक्षित संसार उस महानुभाव के आविष्कार से सुपरिचित है जिसने कि अपने उत्तम परीक्षणों द्वारा एक गणित शास्त्र के नियमों के अनुसार बनी हुई कुर्सी निकाली है जो कि आवश्यक तौर पर स्प्रिंगस पर टंगी हुई थी और जो कि प्रत्येक वस्तु को यहां तक कि तोल देने वाली एक तराजू को भी। इसकी सहायता से उसने यह पता लगाया है कि उसके भोजन में से कितने आउंस भोजन पसीना बनकर निकल जाता है, कितना शरीर की पुष्टि करता है और कितना प्रकृति के अन्य मार्गों द्वारा निकल जाता है।

मैंने उस कुर्सी को खरीद लिया और उसी कुर्सी पर पढ़ना खाना, पीना, और सोना आदि सब काम किया करता था यहां तक कि मेरे विषय में ऐसा कहा जा सकता है कि पिछले तीन वर्षों में मैं तराजू पर ही रहा हूं। जब मैं पूर्ण स्वस्थ होता हूं तो मेरा तोल ठीक २०० पाउंड होता है जितना कि मैं एक दिन के उपवास के बाद घट जाता हूं। पूरा भोजन कर लेने के बाद फिर मैं उतना ही ठीक लगभग १ पाउंड बढ़ जाता हूं। इस प्रकार अपने शरीर में इन २ पाउंड्स को मैं सम जो कि बदलते रहते हैं मैं समतुलित करना चाहता हूं। अपने साधारण भोजन के समय में मेरा तोल २०० पाउंड और यदि भोजन करने के बाद मेरा कुछ वजन इससे कुछ घटा हुआ प्रतीत होता है तो मैं ठीक उतनी शराब पी लेता हूं या उतनी ही रोटी खा लेता हूं जिससे मेरा तोल पूरा हो जाय। अपने अधिक से अधिक खाने पीने में पाउण्ड से

आयुर्वेद

अधिक नहीं बढ़ता जो कि मैं अपने स्वास्थ्य के लिये हर महीने के पहिले
सोमवार को करता हूं। ज्योंही भोजन के बाद मैं अपने आप को सम्तुलित
करता हूं दुबारा देखता हूं तो मैं घूमता हूं जब तक मैं ५ औंस और ४ स्कूपल्स
पसीना नहीं निकाल देता और जब मुझे कुर्सी द्वारा ज्ञात होता है कि मैं इतना
घट गया हूं तो अपनी पुस्तकें पढ़ने लगता हूं और ३ औंस और निकाल देता हूं।
पाउण्ड के अनुपातों का मैं हिसाब नहीं रखता। मैं अपनी घड़ी को देख
कर भोजन नहीं करता परन्तु अपनी कुर्सी को देखकर क्योंकि जब वह मुझे
सूचित करती है कि मेरा भोजन का पाउण्ड पच चुका है तो मैं समझता हूं कि
मुझे भूख लगी है तो दुबारा खाने के लिये परिश्रम करने लगता हूं। अपने उपवास
के दिनों में मैं १½ पाउण्ड घट जाता हूं और उपवास के कुछ दिनों में वर्ष के
अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ पाउण्ड घट जाता हूं। चौथाई पाउण्ड का अंश कुछ
ग्रेन कम नींद ज्यादा नींद लेता हूं। और उठने पर जब देखता हूं कि मैं पूरा नहीं
सोया हूं तो अवशिष्ट विश्राम कुर्सी पर कर लेता हूं। पिछले वर्ष कितना भार खोया
और कितना प्राप्त किया उसका ठीक ठीक हिसाब लगाने पर जिसको मैं हमेशा एक
कापी में लिखता हूं मुझे मालूम हुआ कि मेरे भार का माध्यम २०० पाउण्ड है और
इस सम्पूर्ण वर्ष में मैंने अपने स्वास्थ्य का एक अंश भी नहीं खोया। प्रतिदिन अपने
आपको बड़ी सावधानी से सम्तुलित रखने पर भी और अपने शरीर को भी ठीक ठीक
रखने पर भी देखता हूं कि मैं एक रोगी और कमजोर अवस्था में हूं। मेरा
चेहरा पीला पड़ गया है, नाड़ी की गति धीमी हो गई है और मैं ऐसा
अनुभव करता हूं कि मैं जीवन की अन्तिम घड़ियां काट रहा हूं। महाशय!
इसलिये आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप मुझे अपना एक रोगी (Patient)
रूप में और इन नियमों के अतिरिक्त जिनको मैं पहिले अनुभव कर चुका
हूं कुछ अन्य नियम बताने की कृपा करें। आप की इस मेहरबानी के लिये

छा०

काल्पनिक रोगी

मैं आपका ~~धन्यवाद~~ आजीवन आभारी रहूँगा।

आपका —— सेवक ——

इस पत्र को देखकर मुझे एक वैल डुङिनेरियन की स्मृति में लिखे गये उत्कीर्ण शिलालेख का स्मरण हो आता है। जिसका अभिप्राय था अस्वाभाविक मृत्यु का भय प्रायः करके घातक सिद्ध होता है और मनुष्यों को अपने जीवन की रक्षा के उपायों की ओर प्रेरित करता है। बहुत से ऐतिहासिकों का उपर्युक्त विचार है यह देखकर कि युद्ध की अपेक्षा कई हजार मनुष्य मृत्यु के काल्पनिक भय से मर जाते हैं। और यही बात उन सैकड़ों काल्पनिक रोगियों पर लागू हो सकती है जो कि शरीर शास्त्र के ज्ञान से अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ लेते हैं। और मृत्यु से बचने के लिये प्रयत्न करते हुवे मौत के मुँह में पड़ जाते हैं यह तरीका न केवल खतरनाक ही है परन्तु एक बुद्धिमान् मनुष्य के लिये उचित भी नहीं है। जीवित रहने के लिये ही जीवन को लम्बा करने के विषय में उपलब्ध करना, अपने स्वास्थ्य को एक धन्धा बना लेना और किसी ऐसे कार्य में तत्पर होना जिसका शरीर शास्त्र से कोई सम्बन्ध है ही नहीं ये उद्देश्य इतने तुच्छ कमीने और मानव स्वभाव के लिये इतने अयोग्य है कि एक उदार मनुष्य इन पर चलने के बजाय मरना पसन्द करेगा। इसके अतिरिक्त जीवन की सतत चिन्ता, इसके सम्पूर्ण स्वाद को बिगाड़ देती है और प्रकृति के मरवल एक उदासी छाया डाल देती है। क्योंकि किसी भी वस्तु में जिसका कि हमें प्रतिक्षण खोये जाने का डर है, हमेशा आनन्द ले सकना असम्भव है।

जो कुछ मैंने यहां पर कहा है उससे मेरा अभिप्राय यह नहीं कि मैं किसी भी आदमी को जो अपने स्वास्थ्य की पूरी चिन्ता करता है, दोष दूं। इसके विपरीत क्योंकि मन की प्रसन्नता और कार्य करने की क्षमता — दोनों ही एक अच्छे स्वस्थ प्रजय के लक्षण हैं। एक दुःखित मनुष्य के पास कभी भी यही वस्तुएं नहीं रह सकती। ऐसा मनुष्य जीवित रहने की अपेक्षा इस

आयुर्वेद

बात के लिये अधिक उत्सुक है कि कैसे जीना चाहिये इसलिये हमें शारीरिक चिन्ता को जो कि सामान्य बुद्धि, कर्तव्य और स्वभाव से हमें इसकी तरफ प्रेरित करती है सिवाय भयों और बेहूदा डरावनी बातों और काल्पनिक बिमारियों की ओर नहीं लगाने देना चाहिये।

संक्षेप में — जीवन की रक्षा एक गौण काम होना चाहिये और इसको चलाना मुख्य काम होना चाहिये। यदि हमारा मन इस प्रकार का होगा तो हम अपने जीवन की रक्षा के लिये सर्वोत्तम साधनों का प्रयोग करेंगे और कभी भी किसी घटना के विषय में उत्सुक न होंगे और उस महान सुख को प्राप्त करेंगे जिसको कि मार्शल ने उस सुख की पूर्णता के नाम से कहा है जिसमें न मृत्यु से डर है और नाही मृत्यु की इच्छा है।

वह महान है जो कि अपने स्वास्थ्य को और [illegible] के द्वारा जांचता है और भूख, प्यास, नींद और शारीरिक व्यायाम के प्रति रुचि का इच्छा के अनुसार काम करने के बजाय अपनी रुचि के अनुसार व्यायाम करता है। उसके अन्त में मैं एक कहानी सुनाता हूं।

पौराणिक कहता है कि किसी ग्रामीण पुरुष की धार्मिकता से प्रसन्न होकर बृहस्पति ने उसको मुंहमांगा वरदान देने की प्रतिज्ञा की। उस ग्रामीण पुरुष ने चाहा कि मेरी स्टेट में ऋतुओं का प्रबन्ध मेरे हाथ में रहे। उसे वह प्राप्त हो गया और उसने खुशी से अपने बहुत से खेतों में उस खेत की जमीन के अनुसार वर्षा, बर्फ और धूप को किया। वर्ष के अन्त में जबकि उसे साधारण फसल से ज्यादा की आशा थी उसने देखा कि उसकी फसल पड़ोसियों की फसल से भी थोड़ी है। जिसकारण (कहानी में ऐसा है कि) उस ग्रामीण पुरुष ने चाहा कि बृहस्पति ऋतुओं का प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले अन्यथा उसका बिल्कुल सत्यानाश हो जायेगा।

(अनूदित)

(लेखक--- ए.फ.ज.)

मेरी उम्र उस समय २१ वर्ष के करीब होगी। किन्तु मैं कह नहीं सकता कि मेरे भी कोई भाई हुआ था या नहीं? परमेश्वर ने मुझे कई भाई दिये किन्तु वे मेरे विवाह ही के बाद पैदा हुए। उससे ५ साल पहिले विधिवेग ने सबका बड़ा दिखला दिया और कुछ दिनों तक वह अपनी कामिनी दिखाकर लुप्त हो गया। मैंने उसके नजदीक पहुंचने की कोशिश की और असफल हो गया। मैंने उसको पकड़ने की कोशिश की और वह लुप्त हो गया। ५ साल हो गये मैं उसी दिशा में तलाश कर रहा हूँ उसके पदचिह्न न पा सका।

x x x

मैं उसकी प्रथम कामिनी को अपने दिल में रख कर लौट आया। उसे मैंने अपने प्राणों से भी अधिक छिपाकर रक्खा। किन्तु ज्यों २ उसको मैंने छिपाने की कोशिश की त्यों २ मेरे दिल की अग्नि बढ़ती ही गई। मुझे हर समय बेचैनी सी लगी रहने लगी।

प्रतीत होता था कि उस दिशा में कोई कुछ रखा गया है। उसके पीछे, उसके, कैसे नजर उसी तरफ जाने की कोशिश करती रहती थी। मैंने अपने दिल को बहुत टटोलने की कोशिश की किन्तु उसका कारण न मालूम कर सका। किन्तु फिर भी उस प्रकाश कणिका को मैं अपने दिल से न भुला सका।

× × ×

एक दिन मुझे माँ ने दर्शन दिये। मैं विश्वदेवी की गोद में बैठा था पड़ा था कि एक मधुर लोक में मुझे माता की प्रतिमा दिखाई दी। इसके पहिले मैंने माँ के दर्शन कभी नहीं किये थे किन्तु उसकी तरफ न जाने मैं किस शक्ति से आकृष्ट होता गया। नजदीक जाकर मैं उसके चरणों से लिपट गया और रोने लगा। उसने उठाकर मुझे छाती से लगा लिया और बड़ी देर तक उसी प्रकार मुझे छाती से लगाये खड़ी रही। मैं खुशी के मारे उसके चिपटा खड़ा था।

× × ×

थोड़ी देर बाद।

मैंने अपने अश्रुपूरित नयनों से माँ की तरफ ताका। मैंने देखा कि वह कुछ कहना चाहती है। उसने मेरे सिर पर धीरे २ हाथ फेरते हुए एक पलंग की तरफ इशारा किया। मैंने देखा कि इधर के

बदलाव

उदास उनींद पलंग पर लेटे हुए पलंग पर एक मलीन प्रतिमा लेटी हुई है। माँ ने नजदीक जाकर उसका हाथ मेरे हाथ में पकड़ा दिया। उसका हाथ पकड़ कर मुझे एक प्रकार की स्फूर्ति सी पैदा हुई। मैंने धीरे धीरे उसको उसकी तरफ ताका तो एकदम चौंक गया। मैंने देखा कि जिस कामिनी को अभी तक मैं अपने दिल में छिपाये हुए था वह यहां एक प्रतिमा के समान निश्चल पड़ी हुई थी। मैंने धीरे से उसके हाथ को चूमा कि कहीं उसकी नींद न खुल जाए। वह अपनी गुलाबी नींद में बेहोश पड़ी थी। माँ ने कहा कि इसको अपना भाई समझ कर इसकी सेवा करते रहना।

× × ×

अब मैं।

प्रातः काल जागकर मैंने देखा कि मेरे दिल का बोझ हलका हो गया है। जिस कामिनी को मैं अपने दिल में छिपाये था वह उपयुक्त, मूर्तिमान रूप में मुझे प्राप्त हो गई थी उसने मेरे जीवन की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा कर दिया है। उसका हाथ पकड़ कर मैं दुनियां के किनारे पहुंचने का उपक्रम करता हूँ। किन्तु दुनिया का माया जाल इतना जबरदस्त है कि वह मुझे अपनी तरफ बरबस खींचे लिए जा रहा है। जब कभी दुनिया के प्रलोभन मेरे सामने आते हैं तो मैं उसकी छाती से चिपट कर रोने लगता हूँ और अपनी माँ का ध्यान करता हूँ। उसी का मूर्ति का ध्यान करके मेरे अन्दर नई शक्ति आती है और मैं फिर उसी प्रकार उसका हाथ पकड़ कर अपने रास्ते पर चल देता हूँ।

प्रकीर्ण

(डा० हरिदत्त जी शर्मा)

जिन देशों का प्राचीनकाल में भारतवर्ष से सम्बन्ध रहा है उनमें रोम का नाम बहुत आता है। पहिले लेखों से यह स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि ईसा से कई शताब्दी पूर्व भारतवर्ष सभ्यता और शिक्षा में अन्य देशों का गुरु रह चुका है। अन्य देशों के समान रोम भी अपनी सभ्यता और शिक्षा की उन्नति के लिए हिन्दुस्तान का ऋणी है। इस प्रश्न के उत्तर में कि रोमन लोगों की सभ्यता और जाति क्या चीज़ है? इसी सम्बन्ध [illegible] का उत्तर [illegible] देते हैं —

" In the course of an article in memory of Giacomo Boni, the eminent Italian antiquarian in the review of reviews, Mr. Whickham Steed who knew him intimately tells a

strange story of how he came to make his discovery about the Forum in Rome. For many days Boni was trying to find out the reason why the Romans should have chosen the bottom of a marshy valley liable to be flooded at every rise of the Tiber. as the centre of their civic life and why the sacred way should have laid down to it. suddenly it occured to him and he became possessed by the idea that the earliest Latins were of Aryan stock who had reached Europe from Northern India through Persia and Asia minor." उद्धृत

"Giacomo Boni" नामक एक इटालियन पुरातत्व अन्वेषक के विषय में मिस्टर विकहम स्टीड (Whickham steed), जो कि उसको अच्छी तरह से जानते थे उसके विषय में एक अद्भुत कहानी लिखते हैं कि

आयुर्वेद

फिर उसने रोम में Forum के (रोम के सार्वजनिक स्थान जहां कि न्याय होता था) विषय में खोज की। बोनी महोदय ने यह ढूंढ़ना शुरू किया कि क्यों रोमन लोगों ने ऐसी दलदल वाली घाटी की तली को ढूंढ़ा है कि जिसमें Tiber के बढ़ने पर बाढ़ आ जाती है। अकस्मात उनको यह सूझा और इससे यह स्पष्ट हो गया कि पुरातन Latin आर्य जाति के थे जो कि उत्तरी हिन्दुस्तान से परशिया और एशिया माइनर होकर हिन्दुस्तान पहुंचे।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि यहां भी संस्कृति के आदि मूल हिन्दुस्तानी ही थे जो कि एशिया होकर के यहां पहुंचे थे। इस सिद्धान्त को निश्चित करने ~~लिये~~ ~~मिस्टर विल्सन स्मीड~~ उसे बहुत ही खुशी हुई प्रसन्नता हुई थी। उनके विषय में आप मिस्टर विल्सन स्मीड लिखते हैं —

" This idea drove him to the Conclusion that he must look for light upon the religious

still waters. This gave the Boni clue that he was seeking. The still waters and the sloping grounds with the marsh and the sacred way which ran down to it. All he had to do was to find in the Forum the early Latin burial grounds. A few days later Boni telephoned to Mr. Stead that he had found it and asked him to come and see it, and ~~asked him to~~ Mr. Stead went and saw in a holesome three yards deep by the side of the sacred way, a prehistoric urn of black earthenware, or "Bucchero" containing other urns one of which held human on the ~~same~~ ashes. Several other tombs were also found on the same spot. The incident has, it is evident an important bearing on theories relating to the Ancient history of India."

आयुर्वेद की महत्ता

अर्थात् " वह अच्छा जानता है कि सिर्फ वेदों से ही वह Museum की कुंजी पा सकता है। इसलिए वह वेदों के अध्ययन में लग पड़ा और अन्त में एक दिन उसने विजय की घोषणा की कि जो कुछ वह चाहता था उसने पा लिया है। यह एक वेद का भाग था जिसमें लिखा था कि मुर्दों को जमीन में पानी की तरफ गाड़ देना चाहिए। इसी बात ने Boni को अभिलाषित बात की कुंजी दे दी। कुछ दिन पश्चात् Boni ने स्वीडन को फोन कर दिया कि आकर मेरे आविष्कार को देख लो। Steele ने जाकर देखा कि पश्चिम द्वार के पास कई तीन गज गहरे काली मिट्टी के गढ़े हैं। उनमें से एक गढ़े में लाश पड़ी हुई है। कई और कब्रें भी उसके पास पाई गईं। इस प्रकार का भारतवर्ष की Ancient history से सम्बन्ध जान पड़ता है।"

इन सब बातों के उद्धरण से यह स्पष्ट होता है कि रोम लोगों में कुछ ऐसे रीति रिवाज पाए जाते हैं कि जिनकी उत्पत्ति सिवाय भारतवर्ष के दूसरी जगह नहीं हो सकती हो। इस बात के सिद्ध हो जाने पर

आयुर्वेद

कि रोग की चिकित्सा का आदि मूल अथर्ववेद है यह उनमें भी दृष्टि नहीं लगती कि रोग की शिक्षा का भी मूल अथर्ववेद ही है।

परम्परा के अनुसार ब्रह्मा आयुर्वेद का आदि कर्ता माना जाता है। चरक और सुश्रुत भी इसी बात की पुष्टि करते हैं। चरक में लिखा है कि

"ब्रह्मणा हि यथा प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः" १।२.

इसी प्रकार सुश्रुत में आयुर्वेद के विकास के क्रम से आरम्भ किया गया है अर्थात्

"ओं नमो ब्रह्म प्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वन्तरि सुश्रुत प्रभृतिभ्यः। १।५

तथा अष्टाङ्ग हृदय में आयुर्वेद की उत्पत्ति के विषय में निम्न प्रकार लिखा है—

"ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्

सो अश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्॥ १।३।

अर्थात् ब्रह्मा ने इसका उपदेश दक्ष प्रजापति को दिया और प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को पढ़ाया।

आयुर्वेद की महत्ता

मिश्र के रहने वालों के विश्वास से अपना आयुर्वेद का आचार्य Thoth था और वे लोग इसी को सबसे प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थ का प्रणेता मानते हैं। डा. मुखोपाध्याय लिखते हैं_

" King Osiris and his son Horus, the Egyptian sun god are reputed as inventors of medicine. Thoth Osiris and Horus may be compared with Brahma, Daksha and sun (Bhaskara) as the inventors of the art of healing. The Egyptian Thoth was known to the ancient Greeks as Hermes and Greek scholars trace the Greek Hermes to an Indian source, and assume the existance of two gods of the same name."

अर्थात् " राजा Osiris और उसका लड़का Horus आयुर्वेद के आविष्कारक माने जाते हैं। थॉथ ऑसिरिस और होरस की तुलना, दक्ष और भास्कर से

तुलना करते हैं। मिश्र के टॉथ को ग्रीक लोग Hermes मानते हैं। इस ग्रीक Hermes का ग्रीक साहित्यिक भारतीय निकास ढूंढते हैं और इसी नाम के दो देवताओं को प्राप्त करते हैं।" इस प्रकार यह एक ऐसी श्रृंखला सी बन जाती है जो कि इस बात को बड़ा प्रत्यक्ष सिद्ध करती है कि रोग की चिकित्सा का ज्ञान उन्होंने हिन्दुस्तान से ही लिया है। मिश्र आदि लोगों को वे अपने ज्ञान का निर्भर मानते हैं वे ही देवता हिन्दुस्तान की चिकित्सा के भी निर्भर हैं।

Homer, ग्रीक भाषा का वाल्मीकि है। होमर की पुस्तक 'इलियड' में Art of healing के विषय में चिन्ह पाए जाते हैं जब कि भारतवर्ष में वेदों में Art of healing तथा surgical operation के विषय में लिखा है। महाभारत में इस प्रकार लिखा है कि जब भीष्म पितामह युद्धभूमि में घायल (wounded) पड़े हुए थे तब उनका operation करने के लिए चिकित्सक बुलाए गए थे —

आयुर्वेद की महत्ता

उक्ति — उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः
सर्वोपकरणैः युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः
महाभारत। भीष्मपर्व। १२०. पृष्ठ

अर्थात- उस समय शल्य चिकित्सा को जानने वाले सुशिक्षित- वैद्य लोग सब उपकरणों से सुसज्जित होकर उपस्थित - पास पहुँच जाते।

आज सब surgery का विद्यार्थी प्रतीत होता है जिसने कि भारतीयों के गुरु शुश्रुताचार्य से विद्या सीखी।

ग्रीक डाक्टर के अनुसार Hippocrates (A Greek Physician Born B.C. 456) यूनानी आयुर्वेद का पिता माना जाता है। भारतीय शल्य तथा चिकित्साशास्त्र और रोगों को ठीक करने की विद्या ग्रीक तथा भारत दोनों में मिलती है। पाश्चात्य विद्वानों ने surgery महत्व का तथा Hippocrates ग्रीक ने Esco के मंदिर में अध्ययन था। जिसका होस (Hoao) कहते हैं कि " ग्रीक Esco तथा भारतीय आश्रमों ने, और ग्रीस ने Hippocrates के ऊपर तथा भारत ने

धन्वन्तरी के द्वारा आयुर्वेद की उत्पत्ति को मानने के कारण सादृश्य प्रतीत होता है" जिसमें मिस्टर हॉग कहते हैं कि Hippocrates धन्वन्तरी का और कॉस काशी का अपभ्रंश है। किन्तु ऐतिहासिक समानता से कोई बात निश्चित नहीं की जा सकती है। काशी का कॉस का अपभ्रंश नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह स्थान बहुत पुरानी है। यह बात महाभारत तथा शतपथ ब्राह्मण में लिखी है। इस को greek Physician, Ktesias (About 400 B.C) और Magesthenes (लगभग 300 B.C) को जानते हैं जो कि उत्तरी भारत में आकर रहे। Hoernley यह स्वीकार करता है कि कई समकालीन (chronological) संकेत अस्पष्ट हैं। भारतीय परम्पराओं से यह सिद्ध है कि आत्रेय तथा सुश्रुत के प्राचीनतम आयुर्वेदिक स्कूल ईसा मसीह से 6 शताब्दी पूर्व थे। वह कहता है कि

"This being so and considering that we have no direct evidence of the practice of

human dissection in Hippocratic school, but know of the visit, about 400 B. C. of Ktesias to India, the alternative conclusion of a dependence of greek anatomy on that of India can not be simply set aside." (History of Indian Medicine.)

"अर्थात् इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है कि Hippocrates के स्कूल में वास्तविक dissection का कोई अभ्यास कराया जाता था किन्तु यह ठीक है कि ईसा से ४०० वर्ष पूर्व Ktesias हिन्दुस्तान में आया था। और वह यहां पर हिन्दुस्तानी शरीर विज्ञान की शिक्षा को देखने के लिए आया था।"

इससे यह स्पष्ट है कि ईसा से ४०० वर्ष पूर्व भी ग्रीक लोग यहां पर हिन्दुस्तान की शिक्षा को जानने के लिए ही आया करते थे और यह भी ठीक है कि वे यहां से कुछ सीख कर लौटते थे।

आयुर्वेद

ऊपर के उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि ग्रीक लोग भारतवर्ष की तरफ आकृष्ट थे और धन तथा विद्या की प्राप्ति के लिए यहां आए थे। धन्वन्तरी के पश्चात् के बहुत से आचार्यों की नामावली तक पूरी लिखी जाती है। ब्रह्मा ने दक्ष को सिखाया और फिर अश्विनी-कुमार, इन्द्र, भारद्वाज, आत्रेय और धन्वन्तरी से सब एक दूसरे के पीछे सीखते गये हैं। दक्ष प्रजापति को पुराणों में अदिति के पुत्र के नाम से कहा गया है। ब्रह्मा तथा दक्ष से लेकर नागार्जुन तक आयुर्वेद के आचार्यों की श्रृंखला सम्पूर्ण हो जाती है। उसमें Hippocrates की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। Hippocrates 460 B.C. में पैदा हुआ था और 370 B.C. में उसकी मृत्यु हुई थी। अब मिस्टर हॉर्नले के कथनानुसार 400 B.C. में Hippocrates का चरक के समय के लगभग समकालीन था तब Hippocrates और चरक के समकाल से ही चरक को आत्रेय का उपदेश मानने की यह तैयारी हो जाता था। किन्तु स्पष्ट नाम से

आयुर्वेद की महत्ता

पुरानी है क्योंकि 200 B.C. में बुद्ध ने सर्व प्रथम यहाँ उपदेश दिया और अशोक के लिए हरिश्चन्द्र राजा की कहानी इसमें भी बहुत पुरानी प्रतीत होती है, ऐसी अवस्था में निश्चय इतिहास का निश्चित पता नहीं।

यह प्रतीत सिद्ध होजाता है कि योग तथा भारत की चिकित्सा के आयुर्वेद में शल्य से बहुत सी समानताएं पाई जाती हैं और उन समानताओं के होते हुए भारतवर्ष को ही इनमें से प्राचीन मानना पड़ता है। निःसन्देह कि योग के अनेक धार्मिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सिवाय Boni के उनकी समानता वेदों में बड़े सारे विषयों से करके दिखाई हो ऐसी हालत में यह स्पष्ट होता है कि योग चिकित्सा के विषय में भारत का शिरोमणि रहेगा।

(अनुवाद)

(अनुवादित)

आयुर्वेद

(एक प्रवासी कुल भाई का पत्र)

नोट - : श्री पं. अमीचन्द्र जी विद्यालंकार ने यह पत्र श्री कुलमन्त्री जी के नाम फिजी से भेजा है। इसमें उन्होंने इतनी दूर बैठे हुवे कुलमाता के प्रति उत्पन्न भावों तथा अपनी अतीत गुरुकुलीय जीवन की स्मृतियों को बड़े सुन्दर शब्दों में लिखा है। इसको पढ़कर उन लोगों में जो कि गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली से अत्यन्त निराश रहते हैं कुछ न कुछ आशा का संचार अवश्य होगा तथा वे गुरुकुलीय जीवन के महत्व को समझ सकेंगे ऐसी आशा है।

सम्पादक.

श्रीयुत प्रिय वीरभद्र जी

नमस्ते.

आपका एक पत्र श्रद्धानन्द बलिदानोत्सव के अवसर पर प्राप्त हुआ था। पर एक तो भारत से यहां पत्र आने में ६ से ८ सप्ताह तक लग जाया करते हैं इससे आपने पत्र पर गुरुकुल नसोवा का पता लिखा था।

२०८ प्रवासी कुल भूमि का पत्र

पर लगभग ३ साल से फीजी की आर्यप्रतिनिधि सभा ने पण्डित ज्ञानेन्द्रनारायण पथिक के आ जाने पर फीजी की राजधानी सूवा में आर्य कन्या पाठशाला का कार्य प्रारम्भ करने के लिये मेरा परिवर्तन सूवा में करा दिया। इसलिये आपका पत्र गुरुकुल नसोवा होते हुवे सूवा आया। गुरुकुल नसोवा से सूवा पत्र आने में एक सप्ताह लग जाता है। नसोवा से सूवा होगा तो सब कुल मिला कर १२० मील ही पर यहां पर भारतवर्ष की तरह डाक का प्रबन्ध नहीं है, न यहां रेलें हैं, न डाकिये। सप्ताह में एक या दो बार बोट द्वारा डाक आती जाती है। इसलिये आपका पत्र खूब सुस्ताते हुवे मेरे पास इतने समय बाद पहुंचा कि उस समय उस उत्सव का अवसर ही निकल गया था। इसलिये उस समय पत्र लिखने में कुछ लाभ न देखकर मैंने फिर पत्र नहीं लिखा। एक बात और, यहां पर पोस्ट आफिस में जाकर स्वयं डाक लानी पड़ती है। डाकिया डाक बांटता नहीं, या तो आदमी डाकखाने में अपना बॉक्स रखते हैं जिसमें डाकखाने वाले चिट्ठी इत्यादि डाल देते हैं और मालिक जब चाहे तब आकर चाभी से खोलकर डाक ले जा सकता है। अथवा

अनुवृत्ति

जिसकी चिट्ठी हो वह स्वयं जाकर वहां से मांग लावे। हमारे पास चाभी है। पर पोस्ट आफिस से दूर होने के कारण कभी कभी कई कई दिन चिट्ठी उसी में पड़ी रहती है। और किसी को लाने का अवसर ही नहीं मिलता। इन्हीं सब कारणों से नियत समय पर उत्तर पहुंचाना कठिन हो जाता है।

अभी आपका गुरुकुल जन्मोत्सव के सम्बन्ध में निमन्त्रण पत्र मिला। उसको प्राप्त कर इस दूर देश में बैठे हुवे भी परम पावनी कुलमाता का स्मरण हृदय में सचमुच आनन्द उल्लास का संचार हो गया। वही भागीरथी का तट, वही पुलिन, वही पहाड़, वही सहपाठी, वही शिक्षक, एक एक कर के अपना विद्यार्थी जीवन चल-चित्र की तरह आंखों के सामने से गुजरने लगा। जिस कुलमाता की गोद में खेलते हुए जिसके अमृत मय विद्या-दुग्ध का पान कर हम बड़े हुवे, जिन गुरुदेव के श्री चरणों में श्रद्धा भाव से बैठ कर विद्या प्राप्त की, जिन कुलबन्धुओं के साथ आनन्द और उल्लास में क्रीड़ा करते हुए बाल्य काल बिताया उन्हें संसार की विषम परिस्थितियां

एक प्रवासी गुरुकुल भाई का पत्र

तथा हजारों मील की दूरी भी किसी तरह से भी हृदय पटल पर से हटा नहीं सकती। आप के पत्र से इन्द्रप्रस्थ की पहाड़ी पर बने भव्य भवन और उन कोटों में खिलने वाली गुलाब की सुमनोहर पुष्प कलियां जो आज विकसित हो कर शीघ्र ही संसार क्षेत्र में अपनी सुरभि फैलाने वाली बनेंगी, सब स्मृति पट पर अंकित होने लगती हैं। आप लोगों से जुदा हुए अभी सब कोई सात वर्ष हुवे होंगे। आज यहां फीजी में आये हुए ही मुझे ६ वर्ष होने को आये। जब भारत से चला था तब क्या मालूम था कि इतना समय लगेगा। कर्तव्य तथा सामाजिक सेवा को ध्यान में रखते हुए अभी तो न मालूम कब तक यहां और रहना होगा।

फीजी का समाचार तो फिर कभी लिखूंगा। इस समय पत्र बहुत लम्बा हो गया। यहां पर आर्यसमाज के कार्य का विस्तार दिनो दिन हो रहा है। 'चाद' 'आर्यमित्र' आदि में समय समय पर फीजी के कार्यों का विवरण प्रकाशित हुआ करता है। आप लोगों को देखने का अवसर भी प्रायः ही हुआ करता होगा। एक वर्ष गुरु-कुल नसोवा में कार्य करने के उपरान्त प्रतिनिधि सभा ने

कार्य के विस्तार को ध्यान में रखते हुए मेरा परिवर्तन सूवा करा दिया था। यहां पर कन्या पाठशाला का प्रारम्भ ३४ कन्याओं से किया गया था। अब यह संख्या बढ़ कर १३१ तक पहुंच गई है। इस समय इसमें चार और अध्यापिकायें काम करती हैं। हम दोनों तो उसमें लगे ही रहते हैं। फीजी की किसी भारतीय कन्या पाठशाला में इतनी कन्यायें नहीं हैं। परमेश्वर की कृपा से यहां पर यह संस्था धीरे धीरे उन्नति पथ पर अग्रेसर हो रही है। संस्था के कार्य के अतिरिक्त सामाजिक कार्य का यहां अच्छा अवसर है। कुछ समय से Education Department ने ऐसे नियम बना दिये हैं जिससे बाहर से आने वालों के मार्ग में बहुत रुकावटें हो गई हैं तो भी मेरे मार्ग में वे रुकावटें नहीं आईं। उनके कारण शिक्षा-क्षेत्र में मुझे कार्य करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। गत वर्ष तो फीजी भर के भारतीयों के अध्यापकों की यूनियन ने मुझे अंग्रेजी में 'हिन्दी' पर भाषण देने के लिये भी निमन्त्रित किया था। उस भाषण की एक प्रति मैंने श्री आचार्यजी

की सेवा में भेजी थी पर पता नहीं कि वह उन्हें प्राप्त हुई या नहीं।

"एक बात और, और फिर पत्र समाप्त करूंगा। गुरुकुल के अन्दर रहते हुए अपने कुल का महत्व उतना नहीं पता लगता जितना कि कुल से बाहर संसार क्षेत्र में आकर पता लगता है। इलाहबाद में रहते हुए मुझे इस का कुछ कुछ अनुभव हुआ था। फीजी आकर तो इसका मुझे और भी अधिक अनुभव हुआ। गुरुकुल का शिक्षा-क्रम और सदाचार पूर्ण जीवन ऐसा है कि जिससे बाहर आकर यदि स्नातक जनता के सामने दृढ़ता से काम करें तो उन्हें किसी कष्ट का सामना नहीं करना पड़ता। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य सब साधारण विषयों के ज्ञान से उनका ज्ञान अपेक्षाकृत भारतीय अन्य विद्यालयों से कहीं बढ़ कर होता है। एक ओर संस्कृत द्वारा वे संस्कृत पण्डितों से टक्कर ले सकते हैं तो दूसरी ओर अंग्रेजी द्वारा वे अंग्रेजी पढ़े लिखों से मुकाबला कर सकते हैं। इस तरह गुरुकुल के स्नातक योग्यता की दृष्टि से अच्छी स्थिति में होते हैं और सदाचार के लिये तो गुरुकुल से

आयुर्वेद

बढ़कर कोई संस्था हो ही नहीं सकती।"

मैं प्रवाह में न जाने क्या क्या लिख गया पर यह सब इसीलिये कि इससे पूर्व अपनी कुलमाता के संस्मरण का ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। आज आपका प्रेमपूर्ण निमन्त्रण पाकर चन्द्रकान्त मणि की तरह ज्योत्स्ना से यह हृदय द्रवित होने लगा और लेखनी द्वारा द्रवित हृदय की भावना पत्र पर अंकित हो गई।

उत्सव का अवसर निकल गया। जब यह पत्र पहुंचेगा तब तक न जाने उत्सव हुवे कितने महीने बीत चुके होंगे, पर आपके आग्रह पर यह पत्र उत्तर मैं लिख ही रहा हूँ। आशा है विलम्ब के लिये क्षमा करेंगे।

आपने अर्धशताब्दी सम्मेलन के अवसर पर अजमेर में भेंट होने की आशा प्रकट की है, पर यह तो भगवान की इच्छा पर ही निर्भर है, मैं तो नहीं, पर मेरी आत्मा — शरीर नहीं — आप लोगों के बीच में अजमेर में अवश्य भ्रमण करता होगा, अधिक क्या लिखूं। समय समय पर पत्र लिखते रहा करिये।

आपका भाई
अमीचन्द्र

आयुर्वेद

फल पककर एक वृक्षपात में गिर जाता, वहाँ की धूप
उसे जल्दी का बोध देती है, सड़ जाती है और तरह
तरह का कर जाती है। बस यही समझ जाता है जो उलझती
है। इसी को तुम जीवन पूर्ण कर लो।

गुरु जी! मनुष्य देह पर भार स्वरूप भी क्यों
नहीं चला पड़ते, अगर भगवान अपनी अनुभूति देकर
रखा है तो उसे मूल भाग क्यों नहीं लेता, ठीक कर देते,
जिससे उस पर आलोक उत्तर ही न सके। आयुष्मन्!
इसमें भगवान का क्या दोष और उस पर दोष का
क्या प्रयोजन, अपनी आँख का शहतीर नहीं देखते
और दूसरे का तिल भी ताड़ कर देते हो। जानते हो दीपक
तले अंधेरा होता है। अगर इसे समझ जाओगे, तर
तर जाओगे। गुरु जी! आप कृपा हो जाये तो
विषय कुछ उपाय लगा कर सके।

आयुष्मन्! आज तुम्हारी मति की तपस्या
और साधना कहती है कि तुम्हें वह गुरु मंत्र दे दूँ
जो कि एक अद्भुत चमत्कार को दिखाता, परन्तु

[illegible]

(ब्र० लक्ष्मणदेव जी)

प्रथम भाग का वर्णन करते हुवे हमने देखा था कि कान का मध्यभाग अथवा मध्य कर्ण एक बन्द कमरे के रूप में है। उसकी एक छत एक फर्श और चार दीवारें हैं जिसमें बाहर की दीवार बाह्य कर्ण की अन्त: दीवार अथवा कान के परदे से बनी हैं और अन्दर की दीवार अन्तस्थ कर्ण की बाह्य दीवार से बनी है। सामने की दीवार के अन्दर एक छिद्र होता है जो कि एक नाली का छिद्र होता है यह गले से आकर मध्य कर्ण में खुलती है। इसे Auditary Tube या Eustachian Tube कहते हैं। इस नाली द्वारा गले की वायु का मध्यकर्ण की वायु से सम्बन्ध है यह वायु केवल इसीलिये मध्यकर्ण में आती है कि उससे कान का पड़दा तना रहे। क्योंकि बाहर के पड़दे पर बाह्य वायु का प्रभाव है। उससे वह दब सकता है पर उस वायु का मुकाबिला करने के लिये Eustachian Tube द्वारा वायु गले से मध्य कर्ण में आ जा सकती है। इस वायु का हमारे लिये बड़ा उपयोग है। यदि किसी तरह यह Auditary Tube बन्द हो जाये तो यह प्राय: तब होता है जब कि अन्दर की झिल्ली में सूजन हो। अथवा गले के अन्दर कोई फोड़ा हो, या व्रण हो तो उसके अन्दर उत्पन्न हुई Pus बहकर Auditary Tube द्वारा बहकर कान में चली जाती है। यदि वहां पर रक्तस्राव हो तो उसके भी जाने की सम्भावना हो सकती है। इस प्रकार से मध्यकर्ण में पड़दा सूजना, अथवा रक्त के चले जाने से उसका प्रभाव अन्तस्थ कर्ण पर पड़ने से कान ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकता। परिणाम यह होता है कि मनुष्य बहरा हो जाता है। और जब तक इसकी चिकित्सा

न की जाय तबतक रोगी भारी अथवा हलकी आवाज को बिल्कुल नहीं सुन सकता। अत: यहां पर Auditary tube हमारे लिये इतनी उपयोगी है कि हम शब्द को स्पष्टतया सुनसकते हैं। उसके अन्दर शोथ होजाने से कान के अन्दर भी सूजन चली आने से व्यक्ति किस प्रकार बहरा होजाता है। यह भली भांति प्रतीत होता है। अन्दर की दीवार पर दो अन्य बहुत उपयोगी छिद्र हैं जिनमें से एक छिद्र गोल है और दूसरा अण्डाकार है। इन दोनों छिद्रों का बड़ा ही उपयोग है। यदि उनमें से किसी भी छिद्र का अभाव हो तो मनुष्य बिल्कुल बहिरा होजाता है। वह किसी भी प्रकार की आवाज को बिल्कुल नहीं सुनसकता। मध्यकर्ण की बाहर की दीवार से लेकर अन्दर की दीवार तक उलझु अस्थियों की एक शृंखला बनी है। ये अस्थियां इतनी सूक्ष्म हैं कि उनका ठीक ठीक वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। उनमें से एक अस्थि चित्र में दिखलाये प्रकार की है जो कि आकृति में हथौड़े से मिलती जुलती है। इस अस्थि को Malleus कहते हैं। यह अस्थि कान की अस्थियों में सबसे बड़ी है। दूसरी अस्थि एहरन के आकार की है। एहरन वह होता है जिस पर कि लुहार लोहे को रखकर ठोकता है। इसके भी एक सिर और २ कांटे से होते हैं। तृतीय अस्थि रकाब की न्याईं है। X यदि किसी तरह से यह Auditary tube बन्द होजाये वह प्राय: तब होता है कि जब कि इसके अन्दर की झिल्ली में सूजन हो अथवा गले के अन्दर सूजन हो, व्रण हो तो उसके अन्दर उत्पन्न हुई Pus. बहकर Auditary tube द्वारा कान में चली जाये। यदि वहां पर रक्तस्राव हो तो उसकी अन्दर भी जाने की सम्भावना रहती है। अत्यकाल मे मध्यकर्ण में परदा सूजना, अथवा रक्त के चले जाने से उसका प्रभाव अन्त:स्थ कर्ण पर पड़ने से कान ठीक प्रकार से काम नहीं करसकता। परिणाम यह होता है कि मनुष्य बहिरा होजाता है X

अन्तस्थ कर्ण की रचना——: यह शंखास्थि के अन्दर के भाग पर एक कमरे के रूप में विद्यमान खाली स्थान है जिसकी दीवारें २ प्रकार की हैं

बाहर की दीवार अस्थि की बनी हुई है। अतः स्वाभाविकतया इस कोष्ठ के २ भाग हो जाते हैं। एक वह जो कि अस्थि का बना हुआ है द्वितीय जो कि झिल्ली की बनी हुई है। इसकी कल्पना इस प्रकार कर सकते हैं कि एक चौड़े खाली धातु के बर्तन के अन्दर एक अन्य धातु का बर्तन जड़ दिया गया हो। इन दोनों प्रकार की रचनाओं के अन्तर बीच के अन्तर में एक प्रकार का द्रव (fluid) भरा हुआ है जिसे Perilymph कहते हैं। यह रक्त के द्वारा लसिका के रूप में बनता है। यह शुद्ध चिकना, लेसदार, नीरंग सा होता है। अन्दर के झिल्ली वाले भाग में भी एक प्रकार का लसिका के सदृश द्रव होता है जिसे Endolymph कहते हैं। इन दोनों द्रवों का परिमाण सदा स्थिर रहता है। जिससे कि कान के अन्दर इन का दबाव भी ठीक रहता है। ये दोनों द्रव अन्दर के कोठों में चक्कर लगाते रहते हैं और इनका कार्य शब्द के कम्पन को आगे आगे पहुंचाना है इन द्रवों का कार्य केवल यह है कि वे शब्द की कम्प को कर्ण नाड़ी के द्वारा केन्द्र तक पहुंचाना है। अस्थि के बने हुवे भाग के भी दो भाग होते हैं पिछले भाग अस्थियों की बनी हुई अर्धचन्द्राकार नालियां हैं जिन्हें Semi Circular Canals. कहते हैं। इन नालियों के अन्दर द्रव भरा रहता है जिसे ~~End~~ Endlymph. कहते हैं। इन नालियों का सम्बन्ध एक मोटे गोल के साथ है जिसे Vestibule कहते हैं। इसके अन्दर भी Endlymph. कहते हैं द्रव भरा रहता है। अगला कर्ण के अन्दर के भाग में एक शंखाकार अस्थियों की बनी रचना है। इन सब भागों का आपस में सम्बन्ध है और इसी सम्बन्ध के कारण कान ठीक-ठीक प्रकार काम करता है। Cochlea के अन्दर एक प्रकार की खास रचना है जो कि एक झिल्ली के ऊपर बनी हुई है। इस रचना को यदि ऊपर से देखते हैं तो यह एक प्रकार की Tunnel मालूम देती है। यदि पार्श्व से देखते हैं तो यह एक प्रकार का

बाजा मालूम देती है। इसकी तन्त्रियां बहुत सूक्ष्म और संख्या में बहुत अधिक हैं। तंत्री की सामान्य रचना यह है कि उसके दो भाग हैं। दोनों भाग ऊपर की तरफ मिल जाते हैं। मिलकर एक त्रिभुजाकार रचना बनती है। ज्यों ज्यों हम अन्दर की तरफ जाते हैं त्यों त्यों यह रचना ऊंचाई में घटती जाती है तथा चौड़ाई में बढ़ती जाती है। इसप्रकार की प्रत्येक कान में २४००० तन्त्रियां हैं। इसकी इस प्रकार की कल्पना देखकर वैज्ञानिकों ने बाजे की कल्पना की है। और इस बाजे की कल्पना के कारण ही इस रचना को बाजा कहकर पुकारते हैं। इस रचना को जानने वाला Doctor था जिसका नाम Corti था। उसी Doctor के नाम पर इस रचना का नाम Organ of Corti पड़ गया है। वास्तव में यही रचना ऐसी है कि जहां पर कि शब्द उत्पन्न होता है। प्रत्येक तंत्री मिलकर एक संज्ञावाहिनी सूत्र बनाती है जिसे Auditary Nerve या Acoustic Nerve कहते हैं। इस संज्ञावाहिनी नाड़ी के तन्तु Cochlea के अन्दर से गुजर कर कान से बाहर जाकर मस्तिष्क के श्रवणेन्द्रिय के केन्द्र में पहुंचती है। इसप्रकार से शब्द को अनुभव करने वाली रचना - शब्द की कम्पन को ग्रहण करने वाली रचना Organ of Corti कहते हैं। यह रचना इतनी सूक्ष्म है कि यह १, या २ मिलिमीटर स्थान या स्पेस है। इस सूक्ष्म रचना के द्वारा ही शब्द अनुभव होता है। शब्द को अनुभव करने के स्थान के विषय में वैज्ञानिकों में बहुत काल तक मतभेद रहा है परन्तु अब यह निश्चयात्मक रूप से ज्ञात हो चुका है कि शब्द को ग्रहण करने वाली वास्तव: यही सूक्ष्म रचना है और इस सूक्ष्म रचना के द्वारा शब्द Auditary Nerve के द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचता है और वह हमें सुनाई पड़ता है। कान की संक्षेप में रचना देखने के बाद हमको यह जानना है कि हम शब्द को किस प्रकार अनुभव करते हैं। अर्थात् मस्तिष्क को किस प्रकार शब्द का ज्ञान होता है।

सबसे प्रथम शब्द जब उत्पन्न होता है तो उत्पन्न हुवे शब्द का प्रहार वायु को लगता है। वह शब्द वायु की गति के साथ २

उपसंहार

हमारे कान के पर्दे पर टकराता है। इस शब्द का आघात मध्यस्थ कर्ण में पहुंचता है और वह आघात अस्थियों की श्रृंखला द्वारा जाकर अन्तःस्थ कर्ण में विद्यमान लसिकारूप द्रव में (Perilymph) को प्रवाहित कर देता है। अर्थात् शब्द का आघात अन्दर विद्यमान द्रव को मिलता है। यह द्रव झिल्ली वाले भाग के अन्दर विद्यमान द्रव को धक्का पहुंचाता है। और फिर यह आघात का शब्द प्रकार हमारी संज्ञावाहिनी रचना अथवा शब्द को ग्रहण करने वाली रचना पर पहुंचाता है। यहां से फिर यह Acoustic Nerve के द्वारा मस्तिष्क के केन्द्र तक पहुंचता है। इस Acoustic Nerve के दो भाग हैं जिनमें एक भाग का काम शब्द को वाहन करना है। दूसरे भाग का काम शब्द को सुनने के पश्चात् शरीर को सम-तुलित अवस्था में रखना है। इस दूसरे भाग का सम्बन्ध अन्तःस्थकर्ण की अर्धचन्द्राकार नालियों के साथ है। इन नालियों के द्रव के अन्दर एक प्रकार के सूक्ष्म रज: कण सदृश दाने २ हैं। ये दाने निरन्तर द्रव के अन्दर गति करते हैं और गति करते हुये संज्ञावाहिनी Nerve पर प्रभाव डालते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि हम अपनी स्थिति को कायम रखते हैं और गुरुता के बल के ऊपर अपने शरीर को नहीं छोड़ते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कान शरीर को समतुलितावस्था में रखने का साधन है। इसके द्वारा मस्तिष्क को पता लगता है कि शरीर इस समय किस अवस्था में है। कान के कारण शरीर गुरुता के बल से प्रभावित नहीं होता है। अतः कान जहां पर सुनने का कार्य करता है वहां पर साथ २ शरीर के Balance रखने का भी कार्य करता है। जिधर से शब्द आता है उसी के अनुसार हम अपनी स्थिति को परिवर्तित कर देते हैं। अतः कान का वस्तुतः एक काम नहीं है परन्तु उसको २ काम करने पड़ते हैं।

२५.

लिखित कार्य

संक्षेपतः हमको पता लग गया है कि शब्द का प्रथम वायु के द्वारा पुनः अस्थियों के द्वारा फिर द्रव के द्वारा वाहन होता है और फिर संज्ञावाहिनी स्नायुओं द्वारा शब्द का ज्ञान मस्तिष्क को होता है।

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का सत्रान्तावकाश २१ अगस्त से प्रारम्भ होगा तथा त्रैमासिक परीक्षाएँ २८ अगस्त से प्रारम्भ होंगी

ग्राम और वैद्य

(पं. जयदेव जी विद्यालंकार)

हिन्दुस्तान में आजकल चारों तरफ़ ग्राम संगठन की पुकार मची हुई है। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय महासभा के नायक महात्मा गाँधी दिन पर दिन इस बात पर जोर दे रहे हैं कि नौजवानों को ग्रामों में जाकर उनका संगठन करना चाहिये। ऐसी हालत में प्रत्येक व्यक्ति के दिल में यह ख्याल उठता है कि मैं किस प्रकार से राष्ट्र के इस कार्य में सहयोग देकर भारतमाता के ऋण से उऋण हो सकता हूं।

कोई वैद्य जो कि अभी अपनी विद्या समाप्त करके संसार में प्रवेश कर प्रारम्भ ही करता है तो उसके सामने कई तरह की कठिनाईयां उत्पन्न होती हैं। जब वह विद्यालय से निकल कर अपने ग्राम या शहर में जाता है तो उसके मन में कई तरह के विचार उत्पन्न होते हैं। एक तरफ़ जहां उसके आगे अपनी कमाई का सवाल होता है वहां दूसरी तरफ़ अपने देश के गरीब भाईयों के प्रति दया का भाव संचार करता है। वह अपनी कमाई को करता हुआ अपने देश भाईयों की सेवा करने का विचार करता है। और इसी उद्देश्य को लेकर काम शुरू कर देता है। जितना जितना वह काम को अधिक अधिक फैलाता जाता है उसे मालूम पड़ता जाता है कि इसके द्वारा मैं अन्य कार्यों की अपेक्षा गरीबों की सहायता ज्यादा कर सकता हूं।

वैद्य और ग्राम संगठन

जितना ही वह आदमी ग्रामों में भ्रमण करता है और दुःखित तथा रोगग्रस्त ग्रामीण भाईयों की दुरवस्था को अपनी आँखों से देखता है उतना ही उसे विश्वास होता जाता है कि ग्राम सेवा के लिये वैद्यक ज्ञान की बहुत आवश्यकता है।

"दरिद्रान्भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वरे धनम्" कुवें को दान देने की क्या जरूरत, भरे हुये तालाबों और अगाध समुद्रों में मूसलाधार वर्षा का क्या प्रयोजन, नीरोग को डॉक्टरों या वैद्यों से क्या प्रयोजन। परन्तु वर्तमान भारत की हालत को देखते हुये कुछ ऐसी ही विचित्र बातों का साक्षात्कार हो रहा है।

हम क्या देखते हैं, जहां पहिले से ही सैंकड़ों धर्मशालायें व महन्तों के गगनचुम्बी विशाल डेरे मौजूद हैं वहीं नित्य सैंकड़ों धर्मशालायें बड़े २ सेठों के दानों से बनवाई जा रही हैं। जहां पहिले से एक दो पाठशालायें मौजूद हैं वहीं बड़े बड़े High Schools और Colleges खोले जा रहे हैं। जहां सैंकड़ों वैद्य तथा डॉक्टर इलाज के लिये मौजूद हैं वहीं सरकारी हस्पताल और धर्मार्थ औषधालय खोलते जा रहे हैं। जहां पक्की सड़कें मौजूद हैं वहीं तारकोल की चमकती हुई सड़के हैं मौजूद हैं। संक्षेप में Money attracts money की उक्ति चरितार्थ हो रही है। ताकतवर को हरेक मदद पहुंचाता है परन्तु गरीब और कंगाल को कोई नहीं पूछता। स्कूल, धर्मशालायें, बिजली की बत्तियां, गुरुद्वारे, आर्यसमाज, धर्मप्रचार के केन्द्र, पार्क आदि ये

वैद्य और ग्राम संगठन

सब विभूतियां और ऐश्वर्य आराम, आमोद और प्रमोद उन बड़े बड़े शहरों में पाये जाते हैं जहां लक्ष्मी पहिले से ही विलासनृत्य कर रही है। परन्तु जब हम दूसरी तरफ उपेक्षित, दरिद्र रोगग्रस्त लाखों ग्रामों की तरफ नजर करते हैं तो हमें शहरों की यह चमक दमक मुर्दे पर पड़ी हुई रेशमी चादर के समान प्रतीत होती है। यह आमोद प्रमोद और विलास महाकाल का अट्टहास्य व ताण्डवनृत्य प्रतीत होने लगता है जो समस्त भारतवर्ष के विनाश की आशंका से हमें भयभीत करता है। अस्तु, इस दुःख कथा के ज्यादा विस्तार की जरूरत नहीं क्योंकि इस सचाई को अब प्रत्येक भारतीय जानने लगगया है।

उपर्युक्त वर्णन करने से तो केवल मेरा इतना ही तात्पर्य है कि अन्य विभूतियों की तरह वैद्यक ज्ञान की विभूति का उपयोग भी शहरों में ही किया जाता है जब कि उस ज्ञान की असली उपयोगिता गांवो में है। असल बात तो यह है कि जिसप्रकार दानी महाशय यशप्राप्ति के लिये शहरों में दान देने के लोभ को नहीं रोकसकते वैसे ही वैद्य लोग भी धन लिप्सा के कारण अपने उपयुक्त सेवा के क्षेत्र ग्रामों में प्रवेश नहीं करसके। मेरा यह विश्वास है कि यदि शिक्षित महानुभाव गांवो को अपना सेवा क्षेत्र नियत करेंगे तो उनकी आजीविका खूब सुन्दर रीति से चल सकती है और उन्हें कोई दिक्कत नहीं होगी बल्कि आवश्यकता से अधिक धन की प्राप्ति भी हो सकती है। परन्तु उन्हें अपनी तरफ से यथासम्भव सेवाभाव से ही कार्य करना चाहिये इससे जहां उनकी आजीविका चलेगी वहां

वैद्य और ग्राम संगठन

उन्हें कीर्तिलाभ तथा परोपकारजन्य आत्मसंतोष भी होगा शिक्षित होने से अथवा वैद्य जी अन्य तरीकों से ग्रामीणों की सेवा करने में समर्थ होसकेंगे —:

उदाहरणार्थ —

i बालकों को छोटी पाठशाला खोलसकते हैं।

ii स्वयं अखबार पढ़कर ग्रामीणों को देश की अवस्था से परिचित करा सकते हैं।

iii सामाजिक सुधार (अपने दृष्टान्त द्वारा) करासकते हैं।

iv ग्रामों को सफाई करा सकते हैं।

v स्वदेशी के प्रचार द्वारा क्रियात्मिक देशभक्ति का प्रथम पाठ पढ़ासकते हैं।

हां, इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिये कि अगर वैद्य महाशय ग्राम में निवास करते हुवे केवल अपनी आजीविका का ही ख्याल करेंगे तो वे न अपनी ही सेवा करसकेंगे और न ग्रामीण भाइयों की सेवा करसकेंगे। यदि सेवा की भावना नहीं पैदा जायेगा तो नुकसान ही होगा।

यह तो उन वैद्यों के लिये कहा जो स्वतन्त्र रूप से अपनी सेवा करना चाहते हैं परन्तु यदि वैद्य महोदयों को किसी संस्था की अध्यक्षता में सुसंगठित होकर कार्य करना पड़े तो ये बहुत ज्यादा उपयोगी सिद्ध होसकते हैं। परन्तु कोई भी संस्था बिना धन के किसी कार्य को नहीं चला सकती। अतः जो मैंने ऊपर कहा दानी महाशयों को अपना बृहद्दान श्मशान शब्दों में न देकर ग्रामों में देना चाहिये। इससे उनके दान का सही गरीबों के लिये बहुत अच्छा उपयोग होगा लाखों गरीब नर नारी प्रतिदिन कृतज्ञता से उनके यश को गाया करेंगे।

"औषधालयों का संगठन कैसे हो"?

परन्तु अब यह प्रश्न पैदा होता है कि औषधालयों का ग्रामसेवार्थ संगठन कैसे हो ? भारतवर्ष में कुछ थोड़े से गांव तो हैं ही नहीं कि जिससे स्वल्प प्रयत्न से ही समस्त ग्रामों की सेवा हो सके अतः इस कार्य को एक तहसील या जिले में सीमित करना चाहिये। उदाहरणार्थ २००० ग्राम सहारनपुर जिले में हैं तथा तहसील रुड़की में ५०० ग्राम हैं जो ५ परगनों में विभक्त हैं।

उन ५०० ग्रामों में भिन्न ग्रामों के १८ केन्द्र बनाये जासकते हैं जिनमें हरएक में एक ग्राम औषधालय खोलकर एक वैद्य की नियुक्ति करदी जाये। इसप्रकार से एक तहसील में १८ वैद्यों से साधारणतया अच्छा काम चल सकता है। इस संगठन से हम अनायास ही १लाख ५० हजार गरीब भारतीय जनता की सेवा कर उसे रोगमुक्त करसकते हैं। इस कार्य के लिये १लाख रुपया काफी है जिसके ब्याज से ग्रामसेवा का कार्य अच्छी तरह चलसकता है। एक दानी महाशय के लिये १लाखरुपया देना मुश्किल बात नहीं है जब हम देखते हैं कि वे असामयिक तथा अनुपयुक्त कार्य के लिये बीसियों लाख रुपये लगा देते हैं। सुना है हरिद्वार में एक धर्मशाला २३ लाख रुपया लगाकर बनाई गई है जिससे कोई बहुमूल्य सेवा होसकती है - यह हमारी समझ में नहीं आता। इसलिए यदि १ लाख रुपया इस कार्य के लिए जमा हो तो उससे १८ केन्द्र बनाकर बड़ी अच्छी तरह से काम चल सकता है परन्तु इसमें

सम्पादकीय

१८३.
सम्पादकीय

[illegible]

मसूरी की हार — २

गुरुकुल का हाकी दल जिस शान तथा तैयारी के साथ यहां
से विदा हुआ था उसके बिलकुल ही विपरीत वह मसूरी से
लौट कर आया। यह सत्य ही ठीक है कि ४ साल से गुरु-
कुल लगातार इस मैच में सम्मिलित होरहा है और अपने आप
लगे हुए कालेज के टीके को जितने का प्रयत्न कर रहा है किन्तु
वह टीका जितने के स्थान पर और फिसलता ही जा रहा है
पहिले तो यही टीम दो मैचों को जीतकर फिर हारा करती थी
किन्तु अब की बार वह पहिले ही मैच में २ गोलों से हार
कर लौट आई है। क्या बात है कि लगातार इतनी कोशिश
करते रहने पर भी हम जीत नहीं सके हैं? क्या हमने कभी
बैठ कर इस बात को सोचने का प्रयत्न किया है कि इस
हार का मूल आधार क्या है? जिस समय यही लौट कर आती
है उस समय उसका स्वागत किसी न किसी प्रकार से कर ही
दिया जाता है और एक दो दिन तक हम लोग यही बातों
को बोलते रहते हैं। किन्तु उसके बाद क्या हमने कभी बैठ कर यह
सोचने का कष्ट किया है कि हम विजयी क्यों नहीं हो रहे
हैं? जिस प्रकार समय सब दुःखों को भुला देता है उसी प्रकार
हम भी इस हार को कुछ दिनों के बाद भूल जाते हैं और
हमें यह याद नहीं रहता कि हमारे मुंह पर ऐसी कालिख

मशहूर है। मंसूरी की जनता आज भी गुरुकुल के उर्फ 'बुड्ढे' को नहीं भूली है जो वहां जादूगर के नाम से मशहूर है और जिसके विषय में वहां के लोगों का ऐसा विश्वास बना हुआ है कि बिना 'बुड्ढे' के गुरुकुल की गाड़ी नहीं जीत सकती है। किन्तु खेल में इतनी उन्नति प्राप्त करने पर भी क्या विजय लक्ष्मी हमारे भाग्य में नहीं लिखी? क्या कुलपिता की आत्मा हमें इस हार के लिए बार २ धिक्कार न देती होगी? क्या हमारे कुलबन्धु जिन्होंने कि अपने परिश्रम से खेल में कुल के नाम को उज्ज्वल किया था, कुल की इस दशा को देखकर आंसू बिना पीए नहीं रह सकते होंगे? क्या कुलमाता अपने हार कर लौटते हुए पुत्रों को देखकर दुखित चित्त न होती होगी? ये सब सोचने की बातें हैं जिनकी तरफ भी हमारा ध्यान कभी जाता ही नहीं है।

कुछ भाइयों की यह प्रकृति है कि वे निराश लौटे हुए भाइयों को और भी निराश करने की कोशिश किया करते हैं। किन्तु ऐसे भाइयों के व्यवहारों से उन खिलाड़ी भाइयों को जो कि कुलमाता पर लगे हुए कलंक के टीके को मिटाने के लिए ही

स्पो.

सम्पादकीय

बार बार कोशिश करते हैं उन्हें निराश नहीं होना चाहिए। हाँ उन लोगों की तरह भी बनना चाहिए जो ध, ध बार एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने की कोशिश में अपने प्राण तक खो बैठे किन्तु फिर भी जानकी(?) का उन्होंने कोशिश की और वे लोग सफल हो गये, हाँ बार बार हार कर भी निराश नहीं होना चाहिए और निरन्तर किसी तरह से भी हो इस कलंक के टीके को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। वह दिन हमारे लिए कितनी खुशी का होगा जिस दिन कि कुलपिता अपने पुत्रों की इस विजय पर खुशी से हर्ष के दो बूंद आँसू टपकायेंगे।

हम आशा करते हैं कि खिलाड़ी भाई इस खेल का जरूरी के नियम को ध्यान में रख कर प्रत्येक उन्नति करने की कोशिश करेंगे जिससे कि अगले खेल और भी उत्साह से मजबूती पर धावा करके हम इस कलंक के टीके को मिटायें और कुल माता के यश को कायम रख सकें।

अनुवेदि

गुरुकुलीय राष्ट्रिय महासभा का द्वादशवाँ अधिवेशन

गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा का द्वादशीय अधिवेशन २८, २९ जून को श्री पं. रामेश्वर जी सिद्धान्तालंकार के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ, मन्त्री स्वागताध्यक्ष श्री डॉ. सोमदत्त जी थे। २८ जून को विषय समिति की बैठक श्री पं. रामेश्वर जी के सभापतित्व में हुई। विषय समिति के प्रतिष्ठित सदस्य महर्षि श्री डो. सत्यव्रत जी, श्री डो. सत्यकेतु जी, श्री. डो. केशवदेव जी, श्री चौधरी मंगल सिंह जी एडवोकेट एम. एल. सी., पं. जयदेव जी, पं. भगवद्दत्त जी, पं. नित्यानन्द जी आदि उपस्थित थे। दोपहर २ बजे से खुले अधिवेशन की कार्यवाही शुरु हुई। विषय समिति में प्रस्ताव समिति द्वारा स्वीकृत २० के करीब प्रस्ताव पेश हुए। पहले तीन प्रस्ताव क्रमशः श्री सभापति जी की ओर से पेश किये गये और सबने खड़े होकर सर्व सम्मति से स्वीकृत किये। पहले प्रस्ताव में देश के दिवंगत सर्वमान्य नेताओं के प्रति समवेदना प्रकट की गई। दूसरे प्रस्ताव में आन्दोलन के राजनैतिक कैदियों के साथ किये गये दुर्व्यवहारों के प्रति रोष प्रकट किया गया और तीसरे प्रस्ताव में

१६०.

सम्पादकीय

पूज्य महात्मा गांधी जी की सफलता के लिए भारतीय परमात्मा को अभिनन्दन किया गया और उसमें प्रार्थना की गई थी कि शीघ्र से शीघ्र भारत से अछूतपन का कोढ़ निकाले। इसके बाद दूसरा प्रस्ताव पेश हुआ। इस पर बहुत विवाद हुआ। प्रस्ताव का आशय यह था कि गुरुकुल महाविद्यालय के सर्व उपाध्याय तथा ब्रह्मचारी स्वदेशी के वेश में ही आया करें और गुरुकुल के सभी कर्मचारियों से भी प्रार्थना की गई थी कि वे भी वस्त्रों में स्वदेशी ही पहिनें तथा अन्य वस्तुओं में स्वदेशी का ही उपयोग करें। यह प्रस्ताव बहुत महत्वपूर्ण है। यह आमतौर से देखा जाता है कि बहुत से ब्रह्मचारी तथा उपाध्याय स्वदेशी के वस्त्रों का उपयोग नहीं करते हैं तथा अन्य साधारण व्यवहार में आने वाली वस्तुएं भी, जो कि स्वदेश निर्मित प्राप्त हो सकती हैं, विदेशी ही व्यवहार में लाते हैं। इसका कारण यह नहीं होता है कि वे विदेशी चीजों को पसन्द करते हों या उनको विदेश से प्यार है किन्तु इसका कारण सिर्फ यही होता है कि उनका इस तरफ कभी ध्यान ही नहीं जाता है कि हमें अपने देश की वस्तु खरीदनी है। इसलिए ऐसे महत्वपूर्ण विषय की तरफ ब्रह्मचारियों तथा उपाध्यायों का ध्यान आकर्षित-

अनुच्छेद

निकाय माना है। इसलिए गुरुकुल की दृष्टि से उक्त प्रस्ताव अत्यन्त
महत्व है। इस प्रस्ताव के विरोध में डा. बालकृष्ण जी बोले और
उन्होंने कहा कि हमें मिल के कपड़े इस्तेमाल में लाने चाहिएं
और इसी से देश का फायदा है। परन्तु स्वामी बालकृष्ण जी
स्वयं ही प्रस्ताव का विरोध कर रहे थे और ऐसा प्रतीत होता
था कि उन्होंने स्वयं प्रस्ताव के विरोध में बोलने का निश्चय
कर रखा था। इसके पक्ष में श्री प्रो. केशवदेव जी बोले और
उन्होंने इस प्रस्ताव की महत्ता को बताते हुए गुरुकुल में
इसकी अत्यन्त आवश्यकता पर प्रकाश डाला। ~~श्री~~ इसके
बाद श्री प्रो. सत्यकेतु जी बोले और उन्होंने भी प्रस्ताव का
समर्थन किया और स्वामी [illegible] में एक [illegible] कठिनता
पेश की कि यहां के स्थानीय मंडल में या बाह्य मंडल में और स्नातकों
की अपेक्षा बहुत ज्यादा महंगा कपड़ा मिलता है और [illegible]
स्त्रियों के लिए मोटी खादी आदि पहनना कठिन हो रहा है
और पतला कपड़ा खरीदने में बहुत खर्च होता है। इसलिए
एक ऐसी कमेटी बैठनी चाहिए जो कपड़ों को सस्ता करने
का प्रयत्न करे। परन्तु पंडित जी ने प्रस्ताव में कोई संशोधन
नहीं किया। इस प्रकार यह प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया।

राजनीति

पांचवां प्रस्ताव सबसे मुख्य था और इसमें ही देश के भाग्य का निर्णय था। इस प्रस्ताव के तीन भाग थे। इसमें महासभा ने अखिल भारत संघ को अपना अन्तिम उद्देश्य माना और इसमें भाग लेने वालों को बधाई दी और महासभा के कार्यकारिणी में जो गुप्त उपायों को प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति हो-गई है उसको परित्याग करने का आदेश दिया गया है। दूसरे हिस्से में सरकार के महासभा से सन्धि करने के अवसर को ठुकराने के कारण दुःख प्रकट किया गया है। तीसरे भाग में white paper की निन्दा की गई है और शासन व्यवस्था के लिए विचार करने के लिए महासभा तैयार है। जब कि ~~X~~ 30 जुलाई तक राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जांय और दमन कार्य बन्द हो जाय। थोड़े शब्दों में - यदि 31 जुलाई तक सरकार ने महासभा द्वारा दिये गये अवसर का लाभ न उठाया तो महासभा ने कार्यकारिणी को पूर्ण अधिकार दिया है कि वह परिस्थिति को देखकर आवश्यक संग्राम शुरू कर दे।

इस प्रस्ताव पर बहुत देर तक बहस होती रही और इसमें ४ संशोधन पेश हुए। पहिला संशोधन श्री पं. [illegible] जी वेदालंकार ने पेश किया, दूसरा संशोधन श्री पं. केशवदेव जी

उपानुबन्ध

बैजलंकार ने उपस्थित किया। तीसरा श्री डॉ. सत्यकेतु जी तथा
चौथा संशोधन श्री धीरेन्द्रनाथ जी विद्यालंकार ने उपस्थित
किया। स्वतन्त्र संशोधन श्री पं. जयदेव जी शर्मा चाहते
थे किन्तु क्योंकि वे विद्यासमिति के सदस्य नहीं थे इस
लिए नहीं रख सके। इसलिए इस में उनके मंत्री जी की गलती
थी। इसी बीच में एक नजीर पास हुई की दूसरा संशोधन
जो बाद में पं. केशवदेव जी ने पेश किया बाद में डा.
लक्ष्मणसिंह जी की ओर से प्रान्तीय समिति में आक्षेप और
क्योंकि लक्ष्मणसिंह जी विद्यासमिति के सदस्य नहीं थे इस-
लिए प्रान्तीय समिति के संयोजक डा. प्रेमचन्द्र जी ने उपस्थित
किया। इस पर एक अत्यन्त जरूरी विप्रतिपत्ति उठाई
गई कि यह संशोधन यहां पेश ही नहीं हो सकता है क्योंकि
प्रान्तीय समिति द्वारा यह स्वीकृत नहीं हुआ है। इस पर आचार्य
जी ने प्रान्तीय समिति के संयोजक जी से कहा कि इस विषय पर
प्रकाश डालें। संयोजक जी ने कहा कि यह प्रान्तीय समिति
से स्वीकृत हो चुका है परन्तु जब वे यह कह ही रहे थे तो प्रान्तीय
समिति के बीस सदस्य खड़े हो कर कहने लगे कि यह संशोधन
प्रान्तीय समिति में नहीं आया। इस पर संयोजक जी ने स्वीकार

आयुर्वेद

बाद विसर्जन हुआ और जुलूस से वापस हो गये। इसके बाद शिक्षा समिति की बैठक आरम्भ हुई।

२५ जून १९३३ को प्रातःकाल ८ बजे के लग-भग सभापति श्री पं. [illegible] जी [illegible] का श्री प्रो. [illegible] जी के घर से बैण्ड बाजे के साथ जुलूस निकला। जुलूस पंक्ति से चलकर बैण्ड के साथ महाविद्यालय आश्रम पहुँचा। इस बार के जुलूस में पहले से [illegible] स्कूल शाखा के साथ [illegible] का [illegible] कि कभी संख्या की दिक्कत जुलूस में शामिल होने वालों की संख्या २०, २५ से ज्यादह न थी। जहां गुरुकुल में उपाध्याय, अध्यापक तथा ब्रह्मचारियों की मिलाकर १५० के लगभग आबादी है वहां इतनी उपस्थिति को देखकर बहुत ही निराशा होती है। महाविद्यालय के ८२ ब्रह्मचारियों में से सिर्फ २० ही उपस्थित थे। इतनी थोड़ी संख्या का होना यह स्पष्ट सिद्ध कर रहा है कि विद्यार्थी इसमें इतनी दिलचस्पी से भाग नहीं लेते हैं। खैर, प्रातःकाल ८ बजे के लगभग सभापति की पहिली बैठक आरम्भ हुई। मंगलाचरण हुआ। दोनों तरफ [illegible] लगे हुए थे।

इस प्रकार पहिली बैठक सफलता पूर्वक समाप्त हुई।

द्वितीय बैठक

दूसरी बैठक रात को ८ बजे से प्रारम्भ हुई। उपस्थिति बहुत कम थी। बहुत से मुलतानी प्रतिनिधि जो प्रातःकाल की बैठक में थे उपस्थित थे, समय की अनुकूलता के कारण इस समय उपस्थित न हो सके। लेकिन फिर भी सभा प्रारम्भ हुई। इस बैठक में पहिले प्रस्ताव में सुलतान मोरक्को को गद्दी से उतारे जाने पर रोष-प्रकट किया गया। इस प्रस्ताव को ब्रह्मचारी वीरेन्द्र जी ने बड़े जोरदार शब्दों में सभा में पेश किया और अनुमोदन डा० [illegible] जी ने किया। अनुमोदक महानुभाव ने खूब जोर से बहुत देर तक अनुमोदन किया परन्तु बीच में ही जनता कह रही थी कि जितनी जोर से ये बोल रहे हैं उतने ही जोर से हम फेल करेंगे। आखिर यह प्रस्ताव इसी तरह से फेल हो गया। अगला प्रस्ताव लोक गांधी की स्मृति के बारे में था। इसको डा. बालकृष्ण जी ने पेश किया। लोग इसके विरोध में बोले और इसको फेल करने का निश्चय किया। परन्तु श्री पं. केशव-देव जी के अंतिम व्याख्यान से लोगों ने प्रभावित होकर इसे

सम्पादकीय

"संस्कृतोत्साहिनी" का जन्मोत्सव

८ जून रविवार को संस्कृतोत्साहिनी का जन्मोत्सव श्री बलदेव जी १३ वर्ष के आवास में बड़े समारोह पूर्वक मनाया गया। श्री व्रतेश नारायण दत्त जी सभापति चुने गये, प्रथम श्री मंत्री जी ने उनका प्रस्ताव किया। इसके बाद श्री बालकृष्ण जी, श्री प्रो. मीमांसक जी, श्री निरंजन जी, श्री शिवकुमार जी, श्री महेन्द्र जी आदि ब्रह्मचारियों ने क्रमशः हिन्दी अंग्रेजी, गुजराती, मलयाली तथा पंजाबी भाषाओं में उनका अनुमोदन किया। इसके पश्चात् सभा की कार्यवाही शुरू हुई। सारी सभा में सभापति को छोड़कर सिर्फ ५, ६ ब्रह्मचारी ही भाग लेने वाले थे जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि वक्ताओं के लिए कभी पहिले से तैयारी नहीं की गई थी नहीं तो इतने थोड़े वक्ताओं का मिलना बड़े आश्चर्य की बात है। जहाँ सभा के साधारण अधिवेशनों में बोलने वालों की संख्या इतनी ज्यादा हो जाती है वहाँ जन्मोत्सव में इतने थोड़े वक्ताओं का होना बड़े दुःख की बात थी। कुल कार्यवाही में शायद दो कविताएं और २, ३ लेख थे। इसके पश्चात् सभा की वार्षिक रिपोर्ट श्री मंत्री जी ने पेश की। उस पर सभा के ब्रह्मचारियों ने कुछ प्रश्न किये जिनका कि यथोचित उत्तर दे दिया गया, रिपोर्ट को सुनने से पता चला

साहित्य परिषद् का जन्मोत्सव

अभी १५ जून को साहित्य परिषद् का जन्मोत्सव बड़ी शान के साथ मनाया गया। सभा के सभापति प्रथम भाग में श्री आचार्य देवशर्मा जी थे और उसके बाद में श्री डॉ० लालचन्द जी ने उसका स्थान ग्रहण किया। सभा की कार्यवाही गीतों से प्रारम्भ हुई। इसके पश्चात् पदाधिकारियों की गद्य तथा कविताएं हुईं। इसी सभा में एक व्याख्यान प्रो० वेदव्रत जी का 'सभ्यताओं के केन्द्र' पर हुआ। सभा को देखने वालों का यह अनुभव निश्चय था कि साहित्य परिषद् का जन्मोत्सव नहीं किन्तु गोष्ठी का अधिवेशन हो रहा है। आज से ३, ४ साल पहिले की ही बात है कि साहित्य परिषद् के जन्मोत्सव में निबन्धों तथा साहित्यिक समालोचनाओं सम्बन्धी लेखों की काफी चर्चा हुआ करती थी, किन्तु इस बार वैसी हालत देखने में नहीं आई।

साहित्य परिषद् गुरुकुल की वो सभा है जिसे Royal asiatic ~~society~~ की टक्कर की सभा कहा जाता था किन्तु उसके जन्मोत्सव की ऐसी दुर्गति देखकर किसे दुःख न हुआ होगा। इस दुर्गति के विषय वास्तव में किसे दोष दिया जाय यह हमारी समझ में नहीं आता है। किन्तु फिर भी यदि निष्पक्ष विचार-

अब देखा जाए तो इन मंत्री जी का दोष ही अधिक प्रतीत होता है। यह हमारी समझ में नहीं आ सकता कि गुरुकुल की हालत इतनी खराब हो गई है कि उसमें कोशिश करने पर एक भी अच्छा आयुर्वेद लेख लिखने वाला नहीं मिल सकता था। किन्तु यह उनके परिश्रम की कमी थी कि कोई भी लेख लिखने वाला उन्हें न मिल सका। इसी प्रकार अध्यापक लोगों ने भी किसी का लेख नहीं पढ़ा जाना ऐसा यह कभी सम्भव है कि यदि मंत्री जी उनके पीछे हाथ धोकर पड़ ही जाते तो उन्होंने एक भी अच्छा लेख न लिख सकता। यह बात हमारी समझ में किसी तरह भी नहीं आती है और हमारी सम्मति में मंत्री जी ही इस खराबी कमी के लिए दोषी हैं। आशा है वर्तमान मंत्री जी सभा की उन्नति की तरफ ध्यान देंगे और निश्चय करके उसके प्रकाशन की ओर ले जाने की कोशिश करेंगे।

कार्यकारिणी का निर्णय

आयुर्वेद परिषद् की कार्यकारिणी की ८ तारीख की बैठक में निम्न प्रस्ताव पेश हुआ और कुछ वाद विवाद के बाद स्वीकृत हुआ —

१. यह समिति निश्चय करती है कि आयुर्वेद परि-

आयुर्वेद

यह भी कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित विषय तथा नियमों पर हर तीसरे महीने रजत व पदक प्रथम तथा द्वितीय रहने वालों को दिया जाय।"

~~कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव में दो बातें खटक रही खटकने वाली हैं। अब तक ऐसी प्रथा चली आ रही थी~~

निबन्ध के विषय वर्ष के शुरू में मंत्री जी प्रकाशित करते होंगे।

प्रत्येक निबन्ध का समय तीन महीने होगा। उसके बाद आने वाले निबन्ध नहीं लिए जायेंगे।

निबन्ध ८ full scape से अधिक तथा ४ full scape से कम का नहीं होना चाहिए।

पारितोषिक का निर्णय हर तीसरे महीने प्रकाशित कर दिया जाया करेगा।

पारितोषिक ६० % से कम के नम्बरों वाले निबन्धों पर नहीं दिया जायगा।

कार्यकारिणी के इस प्रस्ताव में जो बातें खटक ही ध्यान देने योग्य हैं। अब तक ऐसी प्रथा चली आ रही थी कि आयुर्वेद परिषद् की तरफ से ३०) के ~~दो~~ तीन इनाम किसी भी निबन्ध पर प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय रहने वालों को दिया जाता था। किन्तु उसमें यह शिकायत रहती थी कि एक वर्ष में तीन प्रतियोगी ही इनाम ले सकते थे। इसी बात को ध्यान में रख कर कार्यकारिणी ने यह निश्चय किया

सम्पादकीय

है कि इस इनाम का विभाजन इस तरह से किया जाय कि जिससे ज्यादा से ज्यादा पुरस्कारार्थी इस इनाम का फायदा उठा सकें। इसीलिए अब यह इनाम हर तीसरे महीने किसी भी विषय पर दिया जायगा। इससे साल भर में ४, ५ पुरस्कारार्थी इनाम पाने के अधिकारी हो सकेंगे और उपन्यास उनमें उत्साह की काफी वृद्धि हो सकेगी।

दूसरी बात जो कि इसमें ध्यान देने योग्य है वह यह है कि इनाम उन्हीं निबन्धों पर दिया जायगा जिन्होंने कि ६० % या इससे अधिक नम्बर प्राप्त किये होंगे। अक्सर यह देखा जाता रहा है कि वर्ष का प्रतियोगिताओं में सिर्फ १, २ पुरस्कारार्थी ही भाग लेते हैं और उनकी भी रचनाएं इतनी उत्कृष्ट नहीं होती कि वे इनाम के लायक कही जा सकें। किन्तु फिर भी अन्य प्रतियोगियों के न होने के कारण लाचार होकर उन्हीं को इनाम देना पड़ता है। किन्तु अब प्रबन्ध से यह होगा कि अब निबन्धों पर जो कि इनाम के लायक नहीं समझे जायेंगे इनाम नहीं दिया जायगा और अगली बार के लिए स्थगित कर दिया जायगा।

ये दोनों ही सुधार इस प्रकार के हैं कि जिनकी तरफ अभी तक किसी भी सभा ने अपना कदम नहीं उठाया था किन्तु इसकी कमी को सभी अनुभव कर रहे थे। अब आयुर्वेद परिषद ने इस तरफ कदम उठाकर औरों को इस बात का रास्ता दिखाया है। आशा है कि अन्य सभाएं भी अपने इनाम का इसी तरह विभाजन करके ज्यादा लाभ पहुंचाने की कोशिश करेंगी।

आयुर्वेद

गुरुकुल समाचार

पूजनीया माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू तथा श्रीमती कमला नेहरू इलाहाबाद से यहां पहुंची। गुरुकुल की तरफ से उनको मानपत्र भेंट किया गया। उसके पश्चात् उसका उत्तर देते हुए उन्होंने ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद दिया तथा कहा कि मैं आशा करती हूं कि ब्रह्मचारी देश की स्वतंत्रता के लिए अपनी कोशिश करेंगे और ऋषिवर की स्मृति को ध्यान में रखते हुए देश की आजादी का भी ध्यान रखेंगे। उसके पश्चात् श्रीमती कमला नेहरू ने भी ब्रह्मचारियों का धन्यवाद किया और उनसे आशा की कि गुरुकुलीय जीवन के आदर्श को पूरा करने की कोशिश करेंगे और अपने गुरुजनों के पद चिन्हों पर चलते हुए देश के गौरव को भी बढ़ाने की कोशिश करेंगे।

श्री पूर्णचन्द्र जी विद्यालंकार फैजाबाद जेल से छूटकर १८ तारीख को यहां आगये। आप पहिले की अपेक्षाकृत कमजोर प्रतीत होते थे। आप १ दिन यहां रहकर अपने घर के लिए रवाना होगये हैं।

गुरुकुल महाविद्यालय के मंडल में (मंडल) रसोइया एक हरिजन बटुक की नियुक्ति की गई। इससे असन्तुष्ट होकर कुछ ब्रह्मचारी ने उस मंडल में भोजन करना छोड़ दिया तथा इसमें एक उपाध्याय और ब्रह्मचारी ने स्टेक

गुरुकुल समाचार

हड़ताल कर दी थी। किन्तु कुछ शर्तों पर उन्होंने फिर काम करने लग गये हैं।

संस्कृतोत्तमा हिन्दी की तरफ से १० तारीख को उर्दू का ~~एक~~ वाद विवाद किया गया। जिसमें ब्र० चन्द्रगुप्त जी प्रथम तथा ब्र० मुक्तिदेव जी द्वितीय तथा ब्र० ज्ञानानन्द जी तृतीय रहे।

श्री पं. दिलीपचन्द्र जी व ब्र० ओम्प्रकाश का स्वास्थ्य आजकल अच्छा है बीमारों की संख्या आजकल कम है।

गुरुकुल महाविद्यालय की परीक्षाएं १४ अप्रैल से आरम्भ होने को हैं तथा विश्वविद्यालय की २१ ~~अप्रैल~~ आगस्त से आरम्भ होने वाली हैं।

ऐसा सुना जाता है कि गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में कई दिनों से हड़ताल जारी है श्री आचार्य जी यहां से इन्तजाम के लिए गये हैं।

खेल विभाग की तरफ से आजकल अन्तर्वर्गीय, अन्तर्महाविद्यालय, अन्तः श्रेणी मुकाबले बड़े जोर शोर से हो रहे हैं।

श्री नारायण राव जी व्यायाम मास्टर ३ महीने के लिए और गुरुकुल में ठहर गये हैं। उनका विचार गुरुकुल कांगड़ी को दयानन्द निर्वाण शताब्दी पर ले जाने का है।